एक विरक्त की लोकयात्रा

डॉ. उदय प्रताप सिंह

एक विरक्त की लोकयात्रा

लेखक
डॉ. उदय प्रताप सिंह

जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्मारक सेवा न्यास
वाराणसी

पुस्तक नाम : एक विरक्त की लोकयात्रा

संस्करण : प्रथम, सन् २०१५ ई.
ज.गु.रा.श्रीरामनरेशाचार्य की षष्टिपूर्ति के पावन प्रसंग
वसंत पंचमी, २४/०१/२०१५ ई.

प्रतियाँ : ५०० (पाँच सौ)

प्रकाशक : जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्मारक सेवा न्यास, वाराणसी

वितरक : श्रीमठ पञ्चगंगा, काशी (वाराणसी)
दूरभाष : (०५४२) २४०२२३०

अक्षर संयोजक : विमल चन्द्र मिश्र

मुद्रक : श्रीजी प्रिन्टर्स, नाटी इमली, वाराणसी

EAK VIRAKTA KEE LOKYATRA
Written by : Dr. Udai Pratap Singh

मन की बात

यह पुस्तक नहीं; अपितु स्वामी श्रीरामनरेशाचार्यजी के चरणों में बैठकर सुने गये शब्दों का समुच्चय है। इन सुने-सुनाए शब्दों में बहुत कुछ विस्मृत, बहुत अर्द्धविस्मृत और बहुत कम स्मृत है। जो स्मृत हैं उन्हीं शब्द समूहों का यह स्तबक आपके हाथों में सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। इसे आप पुस्तक न समझें न इसका मुझे लेखक। मैं तो इस संत चरित्र को आपके हाथों में सौपने का निमित्त मात्र हूँ। यहाँ तो स्मृतियों के एक छोर से उठे शब्द हैं जो भाव लहरियों के अंतिम छोर तक जाते-जाते स्तब्ध हो जाते हैं। इसमें वर्तमान आचार्य के जीवन की कुछ भास्वर रेखाएँ हैं जो कभी छोटी बनती हैं तो कभी बड़ी और एक समय ऐसा भी आता है जब ये विलीन भी हो जाती हैं। उसकी विलीनता के पूर्व जो छाया दिखायी पड़ती है वही सम्प्रदायाचार्य स्वामी रामनरेशाचार्य महाराज के जीवन की पच्चीस वर्षीय साधना है।

आचार्य का अर्थ होता है जो शास्त्र को जानता हो, जानते हुए शास्त्र को लोगों में नियोजित करता हो और स्वयं के आचरण में उस शास्त्र वचन का प्रयोग करता हो। संसार से वैराग्य, विद्वान बनने की प्रबल इच्छा, सम्प्रदाय विस्तार के भगीरथ प्रयास, विद्युप्रवाहित तरंगों की तरह कार्य सम्पादन की त्वरा, भक्तों के मध्य उनके सुख-दुख से तादाम्य, विद्वानों के बीच विमर्श, शास्त्रज्ञों के मध्य तत्त्वचिंतन स्वामी जी के आचार्य जीवन के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण विन्दु हैं– जहाँ से अलौकिक प्रकाश की किरणें दिखती हैं।

उन्हीं किरणों को देखने-दिखाने का यह लघु प्रयास अपने मन की उपज है। इसमें सहभागी बनने के लिए आपका भी आह्वान करता हूँ।

उदय प्रताप सिंह
सारनाथ, वाराणसी

वसंत पञ्चमी
जगद्गुरुरामानंदाचार्यश्रीरामनरेशाचार्य
की षष्टिपूर्ति के अवसर पर
२४/१/२०१५

एक विरक्त की लोकयात्रा

गंगा के हरित कछारों से आवेष्टित, शौर्य, पराक्रम और देशभक्ति से समन्वित, धर्म संस्कृति और अध्यात्म में पगी भोजपुर (बिहार) जनपद की मिट्टी नवरत्नों की खान रही है। भोजपुर पुराण, इतिहास और आधुनिकता का संगम है। गंगा के पावन स्पर्श से फसलों के रूप में सोना उगलने वाली यह धरती सदैव धनधान्य से सम्पन्न रही है। खेती-बाड़ी और पशुपालन तक ही यहाँ के लोग शताब्दियों से सिमटे रहे हैं। ये लोग जीविका की तलाश में कभी बाहर नहीं गए। पारंपरिक समाज की खूबियाँ और दोष यहाँ सहजत: मिल जाते हैं। राजपूत और भूमिहार जातियों के आधिपत्य वाला यह अंचल न कभी अकाल की पीड़ा से व्यथित हुआ और न सूखे-बाढ़ की मार से परेशान ही। गृहस्थी में अलमस्त समाज मध्यमवर्गीय प्रवृत्तियों से परेशान दिखता है। ईर्ष्या, द्वेष, राग-विराग, परनिंदा और दूसरे के अहित में अधिसंख्य लोग निमग्न रहते हैं। मध्यमवर्गीय समाज की जितनी भी विकृत चेतनाएँ यहाँ हैं– वह यहीं के लोगों के विकास में बाधक हैं। फिर भी इस उर्वर अंचल में ऐसे अनेक महापुरुषों का अवतरण हुआ जो अपनी साधना साधुता और त्याग से जनमानस को प्रभावित करते रहे हैं।

बक्सर, आरा, रोहतास जैसे जनपद, भोजपुर के ही पुत्र-पौत्र, परपौत्र हैं। यहाँ संवाद का माध्यम भोजपुरी है। इसकी मिठास और विशिष्टताओं की तारीफ तत्कालीन कलेक्टर और भाषा वैज्ञानिक जार्ज ग्रियर्सन ने किया था। पश्चिमी बिहार के २० जनपदों और पूर्वी उत्तर प्रदेश के २२ जनपदों में भोजपुरी का प्रयोग होता ही है। इसमें जनजीवन की अनेक झाँकियाँ दिखायी देती हैं। लोकसाहित्य के अनेक छंद यहाँ आकार पाते हैं, कई लोक शैलियाँ यहाँ इठलाती हैं। जीवन से मरण तक भोजपुरी जीवन संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू बन गई है। मॉरिशस, त्रिनिडाड, टुबैको आदि देशों में भारतीय संस्कृति का परचम भोजपुरी का शताब्दियों लहराता रहा है।

सत्य के प्रतिमान हरिश्चंद्र इसी भूमि के सम्राट रहे हैं। उनके सत्यनिष्ठ जीवन, दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्तित्व, न्यायप्रिय शासन और मूल्यों से न विचलित होने की

कथाएँ आज भी लोगों को प्रेरित करती हैं। यज्ञ संस्कृति का केन्द्र, धर्म अध्यात्म का शुचितम स्थल बक्सर इसी क्षेत्र में गंगा के पुलिनों पर आज भी विद्यमान है। अतीत में सम्पन्न यज्ञ यहाँ की धार्मिकता की गाथाएँ कहते नहीं थकते हैं। बक्सर के आश्रम उसके जीवंत साक्षी हैं। दण्डी-त्रिदंडी आश्रमों की, वैष्णवाचार्य तथा अन्य सम्प्रदायों की यहाँ एक लंबी शृंखला है, इन शृंखलाओं के प्रतिबिम्ब जब कभी गंगा में पड़ते हैं तो स्वर्गिक छवि उपस्थित हो जाती है। पौराणिक वाङ्मय में सुबाहु और ताड़का का बध यहीं बताया जाता है। राम ने जिससे मर्यादा, शौर्य, पराक्रम और शालीनता का संस्कार हृदयंगम किया था उस ऋषि विश्वामित्र को बक्सर बहुत प्रिय था। स्वयंवर के लिए जनकपुर जाते समय भगवान् श्रीराम ने बक्सर का मार्ग ही चुना था। इस प्रकार अनेक कथा-प्रसंगों और जीवन संस्कृतियों से जुड़ा यह अंचल, (बक्सर)? सहस्राब्दियों से पुण्यभूमि के रूप में विख्यात है।

अंग्रेजों की कुटिल नीतियों का प्रबल प्रतिकार करने वाले भारतीय राजा-रजवाड़ों में चमकते सूर्य की भाँति जगदीशपुर (बिहार) के प्रतापी राजा कुँवर सिंह की जन्म भूमि इसी अंचल में है। अस्सी वर्ष की आयु में अंग्रेजों के दाँत खट्टे करने वाले बाबू कुँवर सिंह १८ दिनों तक आजमगढ़ से अतरौलिया तक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। अंग्रेजों से लड़ते हुए दाहिने हाथ में गोली लगी। उसे वीर कुँवर सिंह ने अपनी ही तलवार से काटकर अलग कर दिया और माँ गंगा को समर्पित करते हुए गर्जना किया कि जीते जी जगदीशपुर की रियासत अंग्रेजों के कब्जे में नहीं जाने देंगे। ऐसे नर नाहर ऐसी ही मिट्टी में जन्म ले सकते हैं। ई. के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष १८५७ के नायक बाबू कुँवर सिंह ही थे। शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने की मेधा रखने वाले मण्डन मिश्र का जन्म भी इसी अंचल में हुआ था। साधुता, संयम एवं तपस्विता के शिखर पर उच्चासन लगाने वाले, सेवाभाव द्वारा घृणित से, अस्पृश्य से भी प्यार करने वाले, घृणितों (कुष्ठरोगियों) में भी आत्म गौरव जगाने वाले, २०वीं सदी में भारतीय धर्म समाज के जाज्वल्यमान नक्षत्र भगवान् अवधूत राम की जन्म भूमि गुंडी (आरा) जनपद में ही स्थित है।

इसी यशस्वी परंपरा में सन् १९५५ ई. में 'परसिया' गाँव में श्रीकृष्ण शर्मा का अवतरण होता है। पिता श्रीजगन्नाथ शर्मा की सबसे बड़ी संतान हैं। इस रत्नगर्भा मिट्टी में उत्पन्न श्री कृष्ण शर्मा में वे सारी विशिष्टताएँ केन्द्रीभूत हैं, जो पूर्ववर्ती महापुरुषों में विद्यमान थीं। इनकी बाल्यावस्था इसी मिट्टी में लोटते-पोटते

व्यतीत हुई। प्रारंभिक शिक्षा गाँव के विद्यालय में सम्पन्न हुई। छठवीं-सातवीं की शिक्षा 'हाथपोखर' विद्यालय से प्राप्त किया। कुँवर सिंह के गाँव जगदीशपुर से आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करते ही गाँव के वातावरण से श्रीकृष्ण शर्मा खिन्न रहने लगे। कूटनीति, निंदा, विकास में बाधा पहुँचाने की प्रवृत्ति, अवसर मिलते ही हानि पहुँचाने की नीयत से श्रीकृष्ण शर्मा ऊब चुके थे। यद्यपि कक्षा चार-पाँच तक उनका बालपन अध्ययन की दुनिया से पलायन करता रहा; पर कक्षा छह से ज्ञान के प्रति जो स्पृहा जगी, वह आज तक शांत नहीं हो सकी। वह निरंतर जागृत है, विकासोन्मुख है। आज भी उनकी दृष्टि पुस्तकों में कुछ नया ही खोजती हुई रहस्यों की अतल गहराई में उतरती है। ज्ञानात्मक चेतना की निरंतर होती यह बृद्धि एक दिन गाँव के गर्हित वातावरण से उन्हें मुक्त होने के लिए प्रेरित करने लगी। तथागत बुद्ध की तरह वे घर-द्वार, मोह-माया त्याग कर काशी आ गए। ज्ञान के नए-नए क्षितिज की तलाश में श्रीकृष्ण शर्मा घर पर पढ़ाई-लिखाई का वातावरण न होने के बावजूद अध्ययन की ओर उन्मुख रहते थे। विपरीत परिस्थितियों में भी उनके ज्ञान की यह उत्कंठा उन्हें काशी खींच लाई। जिस ज्ञानात्मक कोश की खोज में वह घर-बार त्यागकर काशी आए थे– वह साधना अनवरत चल रही है। इसमें उनकी कर्मचेतना का मुख्य योगदान तो है ही उनके प्रारब्ध की भूमिका भी कम नहीं।

शिष्य श्री कृष्णशर्मा को प्रतिभाशाली समझ तत्कालीन गुरुओं ने विद्वान् बनने के लिए आशीष भी दिया और भौतिक रूप से मदद भी किया। श्रीकृष्ण शर्मा नें ६ठवीं-७वीं के पाठ्यक्रम से इतर भी खूब अध्ययन किया। श्रीकृष्ण शर्मा इस संकल्प के साथ अध्ययन रत थे कि पढ़कर "साधन हीनों को पढ़ाऊँगा और निष्काम भाव से ज्ञान का दान करूँगा।" जीविका या नौकरी करने अथवा पढ़कर संसार बसाने की उनकी इच्छा एकदम नहीं थी। उनकी रुचि बड़े लोगों का सत्संगति में अधिक थी। कम अवस्था में ही ज्ञान प्राप्त करने की अभिरुचि के कारण उस समय के एम.ए. पास एक व्यक्ति से उनकी गाँव में गहरी मित्रता थी। वे श्रीकृष्ण शर्मा के साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे और 'मित्र' कहकर पुकारते भी थे। इनके ज्ञान व प्रतिभा से प्रभावित वह सज्जन अपनी पुत्री के वैवाहिक अवसर पर श्रीकृष्ण शर्मा के घर स्वयं उन्हें लेने जाते हैं। इस प्रकार की घटनाएँ श्रीकृष्ण शर्मा को निरन्तर बड़ा व्यक्ति बनने के लिए प्रेरित करती रही। श्रीकृष्ण शर्मा में अध्ययन और ज्ञान प्राप्त करने के प्रति जो अंकुरण हुआ था उसके विकास का

अनुकूल वातावरण काशी में मिला। बड़े-बड़े लोग भी इन्हें विद्यार्थी जीवन का 'आदर्श' मानते थे, इनका सम्मान करते थे। इस तरह इनके बाल-मन में यह भाव घर करता चला गया कि कर्मों का फल भगवान् देता है। यद्यपि श्रीकृष्ण शर्मा उस समय इतने परिपक्व नहीं थे कि प्रारब्ध इत्यादि कर्मों की व्याख्या कर सकें; पर उनमें कर्मों के प्रति आत्यन्तिक निष्ठा तभी से दिखने लगी थी। उनके मन में ये भाव उत्पन्न होते रहते थे कि 'समर्थता' में ही जीवन की सार्थकता है। वे बराबर संकल्प लेते रहते थे कि विवाह नहीं करना है, विद्यार्जन के लिए यदि मजदूरी भी करना पड़े तो लज्जा की बात नहीं। उनके मन में अध्ययन, अध्यवसाय और ज्ञान प्राप्ति की जो आग लगी थी उसे शमित करने के लिए उन्होंने तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में ही शंकराचार्य, जे.पी., कार्लमार्क्स, विवेकानंद इत्यादि राष्ट्रनायकों की जीवनी पढ़ ली थी।

उनके गाँव-घर में पढ़ाई-लिखाई का कोई वातावरण ही नहीं था। पिताजी गायक थे, गाँव के लोग उन्हें विभीषण कहते थे, उनमें कर्मठता एकदम नहीं थी। पर भक्ति-भाव व सद्गृहस्थ के गुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी श्रीकृष्ण शर्मा अपने ज्ञान के अभियान में कोई ढील नहीं देते थे। उन्हें तो ज्ञान, ज्ञान सिर्फ ज्ञान का ही धुन लगी रहती थी। अन्य सांसारिक उपक्रम उनके लिए शून्य थे। पढ़े-लिखे लोगों को तब भी महत्व देते थे और आज तो पूछना ही क्या? वे धन के प्रति बाल्यावस्था से ही निस्पृह और विद्या के प्रति स्पृहावान थे। स्वाभिमान को गिरा कर धन प्राप्त करने की उनकी कभी इच्छा भी नहीं थी। गाँव में और गाँव के आस-पास क्षत्रियों एवं भूमिहारों से उनकी मित्रता थी अतः गाँव के ही एक ठाकुर साहब ने उन्हें गीता पर लिखित लोकमान्य तिलक की व्याख्या दी थी जिसे आज भी संजों कर रखे हुए हैं। संघर्षशील स्वभाव के धनी श्रीकृष्ण शर्मा सत्य के लिए किसी से भी लड़ जाते थे। छठीं-सातवीं पास करते-करते उनके मन में यह धारणा प्रविष्ट हो गयी थी कि ज्ञान प्राप्ति के लिए तो गाँव छोड़ना ही पड़ेगा। उनकी दृष्टि में मध्यमवर्गीय चेतना का गाँव ईर्ष्या, निन्दा में डूबा हुआ होता है और किसी का विकास न हो इस बात का प्रयास गाँव वाले सदैव करते रहते हैं। अतः उन्होंने तीन संकल्प लेकर गाँव त्याग दिया। आजीवन **अविवाहित** रहना, **जन्मभूमि में पुनः नहीं लौटाना** और बड़ा **विद्वान् बनना**। इस संकल्प और योजना में उनके सहायक बने गाँव के एक व्यक्ति जिनके साथ वह भागकर काशी आ गये। आते समय गाँव के लोगों से प्रथम बार में ही मोहभंग

हो गया और गाँव का कोई आकर्षण नहीं रहा। इन प्रवृत्तियों को देखकर गाँव वालों को लगता था कि इस बालक में कुछ अद्‌भुत है, कुछ चमत्कारी है और कुछ विचित्र है? संस्कृत में 'तेजसाम् हि न वय: समीक्ष्यते।' हिन्दी में होनहार 'बीरवान के होत चीकने पात' जैसे मुहावरे श्री कृष्ण शर्मा पर सटीक बैठते हैं। इस तरह श्री कृष्ण शर्मा बाल्यावस्था में ही काशी आ गये।

काशी पदार्पण करते ही गुरु रघुबर गोपालदास वेदान्ती बाजार में ही मिल गये। वह शंकुलधारा के एक संस्कृत महाविद्यालय में प्रधानाचार्य थे। वहीं आठवीं पास कर श्रीकृष्ण शर्मा का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। गुरु जी निरन्तर साधु बनने-बनाने का वातावरण निर्मित करते रहते थे जबकि उनकी मानसिकता साधु बनने की थी ही नहीं। गुरु के ये वाक्य उन्हें प्राय: खटकते रहते थे कि 'इसके माता-पिता ने इसे साधु बनाने के लिए दे दिया है।' एक दिन अकस्मात् गुरु जी ने कहा– "जाओ मुण्डन संस्कार कराकर आओ आज तुम्हारी दीक्षा होगी।' उस दिन दीक्षा हो भी गई। अब वह रामनरेशदास बन गये। धीरे-धीरे विरक्तों के संस्कार मिलते गये। उन्होंने दीक्षा का विरोध तो नहीं किया पर साधु बनने की उनकी प्रवृत्ति अभी भी नहीं थी। वह तो विद्वान् बनने की कल्पना में खोये रहते थे। भविष्य में महन्त बनने की इच्छा भी नहीं थी। उस दौरान उनके गुरु जी उन्हें बराबर साधु व गृहस्थ में अन्तर बताते रहते थे। साधु जीवन को श्रेष्ठ बताते थे और गृहस्थी में जंजाल की बात करते थे।बराबर रामायण का पाठ याद कराते थे। इसके बावजूद गुरु से रामनरेशदास का वैचारिक वैषम्य बना रहता था। सन्त-निवास (श्रीविहारम्) के आस-पास किसी भी स्थानीय व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं रखने देते थे। वह स्वयं अच्छे परिवार से थे। रामनरेशदास इन अव्यावहारिक जीवन शैलियों का विरोध करते थे। मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए वे विद्रोही भी बन जाते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति का मूल्यांकन उसके गुण के आधार पर होना चाहिए न कि जाति, वंश या अन्य आधार पर। वह तिथि १८/१२/१९६८ की थी जब श्रीरामनरेशदास गाँव से काशी आये थे। उनका जन्मदिन बसन्त पञ्चमी है अत: गुरु जी ने विद्यारम्भ की तिथि बसन्त पञ्चमी ही रखी थी। गाँव में यात्रा करते हुए बिहार स्थित डुमराँव में 'लघु-सिद्धान्त कौमुदी' का पहला श्लोक उन्हें पढ़ाया गया। प्रथमा कक्षा तक रामनरेशदास की लघुसिद्धान्त कौमुदी के बड़े विद्वानों में गणना होने लगी। उनके गुरुजी ने जो उनकी संस्कृत की नींव मजबूत कर रखी थी। उनकी पाठन शैली बोधगम्य थी

जिसका लाभ उन्हें मिला। जब श्रीरामनरेशदास प्रथमा में प्रवेश के लिए गये, तो उनकी उम्र व लम्बाई देखकर लोग व्यंग्य में हँसने लगे। गुरु जी कंजूस तो थे ही अव्यवहारिक भी कम नहीं थे। अत: एक वर्ष बाद श्रीरामनरेशदास, रामानन्द संस्कृत विद्यालय में प्रवेश के लिए चले गये। यह आश्रम छूट गया। श्रीरामनरेशदास के डील-डौल को देखकर प्रवेश के समय गुरुओं ने कुछ प्रश्न पूछे जिसे उन्होंने सरलता से बता दिया। इस तरह विद्यालय में उनका प्रभाव जम गया। बाद में न्यायशास्त्र के विषय में लोग उनसे प्रश्न पूछते थे और वे सरलता से उत्तर दे देते थे। उस विद्यालय के प्रधानाचार्य माधवाचार्य थे जो यादव जाति से आते थे। अत: ब्राह्मण सहपाठियों ने रामनरेशदास को उनसे पढ़ने को मना किया। रामनरेशदास ने इस संकीर्णता (जातिवाद) का विरोध किया। माधवाचार्य के प्रति रामरनेशदास की जो उदारता थी वह उनके जीते जी तक बनी रही। इस प्रकार प्रारम्भ से ही रामनरेशदास संकीर्णताओं के विरोधी व उदारता के पक्षधर थे। यह १९६९ ई. का समय था। वहाँ व्याकरण की पढ़ाई अच्छी होती थी। अत: रामनरेशदास के अध्ययन की नींव और मजबूत हो गई। फिर भी वहाँ सौहार्द नहीं बन पाया। वहाँ बाहर के सभी लोग रामनरेशदास को ही पूछते थे अत: अन्य लोग उनसे ईर्ष्या करने लगे। न वहाँ मेधावी बनने का वातावरण नहीं था। उसी समय रामनरेशदास इतने प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न हो गए थे कि परीक्षा में ड्यूटी करने वाले अध्यापक भी उन्हें प्रणाम करने लगे थे। वह वहाँ से पुन: संत निवास (श्रीविहारम) आश्रम में लौट आए। संत निवास में गुरुजी सदैव अपने वंश की बड़ाई किया करते थे और अपने परिवार की प्रशंसा। रामनरेशदास ने गुरु जी से एक दिन प्रश्न किया कि कबीर, सूरदास, रैदास और आपके गुरु क्या बड़े परिवार से थे।' यह सुनते ही गुरुदेव नाराज हो गये, फिर भी रामनरेशदास उन्हें मान-सम्मान देने में कमी नहीं करते थे। यह सब होते-हवाते १९६९ ई. आ गयी। यद्यपि गुरुदेव द्वारा दिये गये मन्त्र, संरक्षण से रामनरेशदास का जीवन बहुत विकसित हुआ। उनके साधु जीवन में गुरु का यह प्रकाश कई दिशाओं में फैला, उसका बड़ा कारण यह था कि उनके गुरुदेव का जीवन बहुत पवित्र था, कोई लांछन नहीं था और सफल अध्यापकीय जीवन था।

सन् १९७० में गुरुदेव ने आदेश दिया कि 'संत निवास से बाहर चले जाओ, घर चले जाओ।' उनके आदेश का रामनरेशदास ने पालन कियां। उनका दिया हुआ सामान लौटाकर एक महात्मा से मिले और रामानंदी आश्रम

'लोटाटीला' ईश्वरगंगी वाराणसी में रहने लगे। यह रामानंद सम्प्रदाय का प्रतिनिधि आश्रम है। आज भी इसका महत्व काशी के दस प्रमुख आश्रमों में परिगणित है। यहाँ पाँच-छ: महीने रहने के दौरान कभी पूर्व आश्रम पर रामनरेशदास का जाना नहीं हुआ। इस आश्रम पर भोजन, संत-साधु सबकुछ उपलब्ध थे। यहाँ रामभद्रदास महात्मा के रूप में पहले से ही विद्यमान थे। इनका मूल स्थान नेपाल था। ये पढ़े-लिखे साधु जीवन से परिपूर्ण और रामनरेशदास के पक्षधर महात्मा थे। इन्होंने ही रामनरेशदास को तर्कसंग्रह, न्यायबोधिनी टीका पढ़ाया। इन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने अध्ययन के लिए न्याय दर्शन का मार्ग चुना। सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और न्याय पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। उस समय यहाँ न्याय के प्राध्यापक पंडित सुधाकर दीक्षित थे जिनकी विद्वता की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। यद्यपि इस आश्रम में रहकर पूर्व मध्यमा प्रथम खंड का अध्ययन प्रारम्भ हुआ पर अव्यवस्थित प्रबंधन के कारण विश्वविद्यालय बिना भोजन के ही जाना पड़ता था। भगवान को भोग लगाने में घंटों लग जाते थे। एक दिन मनोरंजन के मूड में ही महंत और रामनरेशदास के बीच कुछ बातें हो गयीं। उस दिन साधु रामनरेशदास अस्वस्थ थे। महंत ने मनोविनोद में ही कहा कि "मैं तो समझ रहा था कि आप दिवंगत महंत के यहाँ चले गए' प्रत्युत्पन्नमति विद्यार्थी रामनरेशदास ने कहा– "मैं तो विद्यार्थी हूँ वे मुझे क्यों बुलायेंगे? महंत तो महंत को ही बुलाते हैं।" इस उत्तर से आश्रम में रहने वाले विद्यार्थी इनसे रुष्ट हो गये और कहने लगे कि आपको महंतश्री के प्रति ऐसा नहीं कहना चाहिए था। इसी बीच संत निवास के वेदांती महाराज ने लोटा आश्रम में संदेश भेजकर रामनरेशदास से मिलने की इच्छा व्यक्त की।

१९७० ई. में पुन: रामनरेशदास संत निवास वापस आ गये। यद्यपि पढ़ाई का क्रम यथावत् चल रहा था। पंडित सुधाकर दीक्षित ही उनके गुरु थे। उनके प्रति उनकी पूरी निष्ठा भी थी फिर भी संत निवास में वेदांती रघुवर गोपाल दास जी जो विशिष्टाद्वैत के प्रथम आचार्य थे, वे उन्हें पढ़ाया करते थे। इस समय तक रामनरेशदास विद्या की दुनिया में प्रौढ़ हो चुके थे। अपनी से ऊँची कक्षा में पढ़ाते थे। जो लोग न्यायशास्त्र में प्रवीण नहीं थे वे रामनरेशदास से प्राय: पढ़ा करते थे। विद्यार्थी रहते हुए उनकी प्रतिष्ठा अध्यापन के क्षेत्र में भी बढ़ती गयी। इस तरह पूर्व मध्यमा द्वितीय खंड में वह पहुँच चुके थे। पोष्टाचार्य काशी में दर्शन के बहुत बड़े विद्वान थे वह साधु रामनरेशदास की प्रतिभा से प्रभावित होकर उनके गुरु

वेदांती से उन्हें विद्वान बनाने के लिए मांग लिया। १९७१ में साधु रामनरेशदास 'काशी विद्या मंदिर मिश्र पोखरा' वाराणसी में पढ़ने लगे। इस विद्यालय का काशी की पांडित्य परंपरा में महत्वपूर्ण नाम है। यहाँ के प्रमुख आचार्य पोष्टाचार्य भी अपने त्याग, श्रेष्ठ संस्कार और विद्वता के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी अध्यापन शैली बहुत प्रभावशाली थी। सभी दर्शनों की एक-एक पुस्तक उन्होंने पढ़ायी। सांख्य दर्शन की सांख्य तत्व कौमुदी, अर्थसंग्रह मीमांसा, योगदर्शन, अन्य दर्शनों की टीका पं. वाचस्पति मिश्र ने लिखी थी। उनकी तत्व कौमुदी भी रामनरेशदास ने वहीं पढ़ी। विद्वान् होते हुए भी पोष्टाचार्य का व्यावहारिक जीवन उत्तम नहीं कहा जा सकता। उनमें कई प्रकार की संकीर्णताएँ थीं। यद्यपि उन्होंने रामनरेशदास को ममत्व दिया। उन्हें महात्मा जी कहकर पुकारते थे। उनके द्वारा दिये गए ज्ञान के वे ऋणी हैं फिर भी वहाँ उन्होंने परीक्षा नहीं दी और संत निवास (पियरी) वापस लौट आये। यहाँ पुनः व्याकरण से पढ़ाई शुरू की और मध्यमा प्रथम खंड पास किया। इस आश्रम में उनके गुरु दक्षिणामूर्ति के व्याकरणाचार्य पं. गयादीन मिश्र थे। यहीं प्रथम, द्वितीय, तृतीय खंड उत्तीर्ण कर उपाधि प्राप्त की। प्रथम खंड का सिद्धांत क्रम पं. गयादीन मिश्र जी से पढ़ा। यहाँ रामनरेशदास एकलव्य की भूमिका नें न्याय, व्याकरण और वेदांत का स्वाध्याय करते रहे। गुरुवृन्दों के अध्यापन से अधिक उन्होंने एकांत स्वाध्याय द्वारा अर्जित किया।

अध्ययन के इसी क्रम में रामनरेशदास ने अस्सी स्थिति संस्कृत महाविद्यालय में पढ़ाई शुरू की, पं. रामानुग्रह शास्त्री वहाँ गुरु के रूप में विद्यमान थे। यद्यपि वह भी अव्यवहारिक संत थे। वहाँ रामनरेशदास को भोजन वस्त्र की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। अभाव की इस दुनिया में उनकी विद्या का भाव बढ़ता गया और न्यायशास्त्र के प्रकांड पंडित पं. बद्रीनाथ शुक्ल और आचार्य वशिष्ठ त्रिपाठी से रामनरेशदास का सम्पर्क हुआ। वहीं 'न्याय मुक्तावली दिनकरी' टीका पढ़ी। व्याकरण की परीक्षा देते हुए भी न्याय के स्वाध्याय में वह निमग्न रहा करते थे। बड़े गुरुओं के सम्पर्क में रहने के कारण उनकी विद्या और ज्ञान का क्षेत्र निरंतर बढ़ता गया। विद्यादान वह पहले से ही करते थे अतः उनकी सफल अध्यापक की छवि बढ़ती गयी। श्वेतधवल वस्त्र धारण करने वाले रामनरेशादास के पास अब लाल कपड़े वाले संन्यासी भी आने लगे। वह सिद्धांत कौमुदी पढ़ते भी थे और पढ़ाते भी थे। उसके तीन खंडों का अध्ययन तो अस्सी स्थित आश्रम में ही हुआ। न्यायशास्त्र के प्रकांड पंडित बद्रीनाथ शुक्ल से एक दिन साधु

रामनरेशदास ने कुछ जिज्ञासा व्यक्त की। उन्होंने उपेक्षित भाव से कहा- 'किं बदत्येन बाबा'। बाद में शुक्ल जी उनसे प्रभावित हुए और अपना शिष्य बनाकर न्याय की सभी विधाओं में पारंगत कर दिया। इस तरह रामनरेशदास का व्यक्तित्व पद और कद विद्यार्थियों, विद्वानों और संत-महात्माओं में बढ़ता गया। काशी में शिक्षा के भगीरथ पं. मदन मोहन मालवीय के गुरु हरिहर बाबा के शिष्य फक्कड़ बाबा की कृपा रामनरेशदास को अस्सी आश्रम पर ही प्राप्त हुई थी। उन्हें इस ऊँचाई पर देखकर अनेक लोग ईर्ष्या करते थे। बदला लेने के भाव से दुर्व्यवहार करते थे और अप्रत्यक्ष रूप से शत्रुता भी साधते थे। कहना न होगा कि जिन सांसारिक प्रवृत्तियों से बचने के लिए रामनरेशदास ने घर, परिवार, गाँव छोड़ा, वे उन्हें काशी में भी मिलने लगीं। इससे वो क्षुब्ध हो गये।

मध्यमा चतुर्थ खंड में अध्ययन के लिए शारदानंद ब्रह्मचारी के आह्वान पर साधु रामनरेशदास दक्षिणामूर्ति मठ नई सड़क वाराणसी आ गए। यहाँ उन्हें अध्ययन के लिए शारदानंद जी के सौजन्य से सारी सुविधाएँ मिलती गयीं। वस्त्र और भोजन के लिए मधुकरी बंद हो गयी। भोजन, आवास, वस्त्र सब कुछ इस मठ में मिलने लगा। शास्त्री तक यहाँ उनकी विद्वता का खूब विकास हुआ। इनकी प्रतिभा से प्रभावित हो यहाँ के वयोवृद्ध संन्यासी इन्हें संन्यास धर्म में दीक्षित करना चाहते थे, परन्तु वैरागी होने के कारण इन्होंने यह आग्रह स्वीकार नहीं किया। यहाँ व्याकरण के साथ न्याय का भी अध्ययन होता रहा। यद्यपि यहाँ सौहार्द का वातावरण था। फिर भी प्रभावी व्यक्तित्त्व और वैरागी रामनरेशदास के कक्ष में जिज्ञासु लोगों की भीड़ से लोग उनसे ईर्ष्या करने लगे। इस समय तक उनका स्वाध्याय, वैरागी जीवन और साधुता ऊँचाई पर चढ़ने लगी थी। उसी आश्रम में केरल का एक ब्रह्मचारी जिसका नाम रामानंद था उनके प्रति बहुत ईर्ष्यालु था। उसकी इस प्रवृत्ति से नाराज होकर रामनरेशदास के कुछ मित्रों ने उसे पीट दिया। निरंजनी अखाड़ा के इस आश्रम में ब्रह्मचारी शारदानंद के सौजन्य से इन्हें जो प्रेम, सौहार्द और आत्मीयता मिली वह वैष्णवों और रामानंदियों द्वारा आज तक नहीं प्राप्त हो सकी। यह साधु रामनरेश दास के सदाशयी व्यक्तित्व का ही परिणाम लगता है।

साधु रामनरेशदास ने शास्त्री तक दक्षिणामूर्ति में रहने के उपरांत उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, मीरघाट, वाराणसी से न्याय में आचार्य किया। वहाँ प्रवेश के समय ही पं. पुरुषोत्तम त्रिपाठी से विवाद हो गया। विद्यालय में रामसेवक दास

झा न्याय के पंडित और विद्वान् थे। विद्यार्थियों के प्रति अत्यंत उदार थे। वहाँ रामनरेशदास स्वाध्याय में ही निमग्न रहते थे। उनसे अवस्था में बीस वर्ष बड़े अब स्व. श्यामाशरण जी के साथ उनकी सहपाठिता थी। रामसेवकदास से प्रत्यक्ष न पढ़ते हुए भी कभी-कभी व्यवधान आने पर उन्हें पढ़ना पड़ता था। उसी क्रम में सांगवेद विद्यालय में जो महाराज बनारस, पंडित राजराजेश्वर शास्त्री द्रविड़ ने मिलकर स्थापना की थी, उसमें हुस्मने शास्त्री से व्याकरण का अध्ययन करते रहे। वहीं धर्मदत्त बच्चा झा की सिद्धांत लक्षण टीका का अध्ययन किया। लेकिन अत्यधिक दूरूह होने के कारण उसे कम ही पढ़ सके। एक वर्ष में कुल १२-१३ पृष्ठमात्र। इसी क्रम में पंडित बद्रीनाथ शुक्ल से 'शब्दशक्ति प्रकाशिका' का विधिवत् अध्ययन किया। यहाँ एकलव्य की मनस्थिति से स्वाध्याय होता रहा। सालिगराम बल्लभ सांगवेद विद्यालय रामघाट आज विधिवत चल रहा है। उसके जीवन की एक शताब्दी व्यतीत हो चुकी है। उसकी प्रतिष्ठा आज भी संस्कृत जगत में है।

उदासीन विद्यालय में अध्ययन का क्रम एकलव्य जैसा ही था। वहाँ पढ़ना और परीक्षा देना दो महत्त्व के कार्य थे। पढ़ने के साथ न्याय मीमांसा और वेदांत पढ़ाते भी थे। अतः आदर्श (टापर) विद्यार्थी के रूप में उनकी ख्याति बढ़ती चली गई। मीमांसा का विधिवत अध्ययन सुब्रह्मण्यम् शास्त्री से किया। वह अपनी विद्या, आचार-विचार व संस्कार में काशी के प्रथम नागरिक जैसे थे। आजीवन कभी अस्वस्थ नहीं हुए। एक बार गिरे और उनके प्राण पखेरू उड़ गये। उस विद्यालय में स्वाध्याय का क्रम कुमारिल भट्ट की टीका से संचालित था। वेदांत, व्याकरण, न्याय शास्त्र की सभी शाखाओं का स्वाध्याय करते हुए अब तक रामनरेशदास एक प्रतिष्ठित विद्वान् की ख्याति अर्जित कर चुके थे। अब तक पूरे देश के संस्कृत जगत् में उनके अनेक प्रतिभाशाली शिष्यों की स्थापना हो चुकी है। कई आचार्य, प्राचार्य तो कई कुलपति की शोभा में बृद्धि कर रहे हैं। काशी-हरिद्वार, जयपुर, दिल्ली, पटना और उज्जैन में उनके प्रतिभाशाली शिष्य उनकी यशः पताका फहरा रहे हैं।

सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत रामनरेशदास का ऋषिकेश के कैलास आश्रम में आना-जाना होने लगा। यह क्रम लगभग दो वर्ष तक चला। कैलास आश्रम के शताब्दी महोत्सव में पहली बार श्री रामनरेशदास वहाँ गए थे। आश्रम के महामंडलेश्वर स्वामी विद्यानंद जी थे। उनसे निरंतर आत्मीयता बढ़ती गई। वहाँ ज्ञान के जिज्ञासु पढ़ने-पढ़ाने वाले संत उस समय भी थे और आज भी। १३२ वर्षीय आश्रम में प्रथमतः १९८० ई. में

रामनरेशदास विद्यादान हेतु गए। उस समय हरिद्वार में दशनाम संन्यास आश्रम का कोई विद्यालय नहीं था। रामनरेशदास ने महामंडलेश्वर के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि हरिद्वार में ही वे पढ़ाएंगे अत: वहाँ एक आश्रम बने और विद्यालय भी। इसे विद्यानंद गिरिजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। १९८८ ई. के मध्यकाल तक दशनाम आश्रम में ही स्थायी निवास रहा। पुन: बनारस आ गए जिसका वृत्तांत आगे दिया जायेगा।

श्रीरामनरेशदास के कुशल अध्यापन व सौहार्दपूर्ण व्यवहार से आश्रम में पढ़ने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती गई। प्रवृत्ति बढ़ी। संसाधन में भी बृद्धि हुई। यहाँ ऐसा क्रम बना कि पढ़ने वाले पढ़ाने भी लगे। संत-महंत, विद्यार्थियों से भरपूर यह आश्रम उस समय हरिद्वार का प्रतिनिधिभूत आश्रम बन गया। यहाँ का अध्ययन-अध्यापन हरिद्वार के लिए एक शिक्षा क्रांति जैसी थी। व्याकरण, न्याय, वेदांत नव्य न्याय शास्त्र, मीमांसा सांख्य, योग सबका विधिवत अध्ययन होता था। न्यायशास्त्र का तो यह पहला विद्यालय था। यहाँ के विद्यार्थियों का गुणवत्तायुक्त उत्पादन पूरे हरिद्वार में चर्चा का केन्द्र बन गया। १९८६ में विद्यानंदगिरि महाराज के साथ चातुर्मास हेतु 'सामाना' पंजाब गये। वहाँ उग्रवाद के कारण विद्यानंदगिरि महाराज ने कार्यक्रम स्थगित कर दिया। यह रामनरेशदास के लिए एक चुनौती थी। उन्होंने अमृतसर में एक माह तक रुककर धर्म का प्रचार किया। उनकी इस दृढ़ता से महामंडलेश्वर विद्यानंदजी अत्यंत प्रसन्न हुए। इसी क्रम में उनके साथ सामाना (पंजाब), फलौदी (राजस्थान) और अमृतसर (पंजाब) में तीन चातुर्मास भी सम्पन्न किये।

महामंडलेश्वर के साथ रहते हुए अनेक संत-साधुओं ने यह अनुमान लगा लिया था कि रामनरेशदास अब संन्यासी हो जाएँगे। पर रामनरेशदास की वैरागी-दृढ़ता ने ऐसा उन्हें करने नहीं दिया। इतना ही नहीं काशी की पारम्परिक विद्या ने कैलास आश्रम में भी प्रभाव जमा लिया। दशनाम अखाड़े में रहते हुए महादेव और परब्रह्म श्रीराम की आराधना ने साधु रामनरेशदास में एक विशेष प्रकार की ऊर्जा भर दी। वह आश्रम सर्वसुविधा सम्पन्न था। कुछ दिनों बाद तो वैरागी रामनरेशदास का इतना प्रभाव बढ़ गया कि बाहर से आने वाले लोग हरिद्वार के आश्रम को ही मुख्यालय मानने लगे। महामंडलेश्वर विद्यानंद जी से लोग प्राय: पूछने लगे कि रामनरेशदास कब संन्यास लेंगे? वह रोमांचित होकर कह उठते थे कि "यह मैं नहीं जानता पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मेरा चौड़ा सीना ही

रामनरेशदास को पचा सकता है, अन्य में यह कूबत नहीं।'' साधु रामनरेशदास के साथ यह घटित भी हुआ। उन्हें रामानंदाचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने वाले ही उनकी तेजस्विता से घबरा कर उनके प्रति निंदक की भूमिका में उतर पड़े। यद्यपि रामानंद सम्प्रदाय के सामान्य, निश्छल, सीधे-सादे निष्कपट साधुओं के लिए श्रीरामनरेशाचार्य का रामानंदाचार्य पद पर अभिषेक होना अत्यंत प्रसन्नता की बात थी, गर्व की बात थी पर कुंडलीमार अखाड़ा परिषद के लोगों को वह अब भी हजम नहीं हो रहे हैं।

रामनरेशदास विद्यार्थी जीवन से ही अत्यंत विनम्र व कुशाग्र बुद्धि के थे। संतों, साधुओं, महंतों, आश्रमों व अखाड़ों के महामंडलेश्वरों से मिलते समय उनकी प्रबल इच्छा होती थी ज्ञानात्मक संसार का विस्तार। अतः अत्यंत विनम्र भाव से वह साधकों के पास जाते थे और ज्ञान पिपाशा की चर्चा करते थे। उनके साधु जीवन की इस प्रवृत्ति से काशी और हरिद्वार के संत, साधु, साधक परिचित हो गए थे। उनके जीवन में चार ऐसे दिव्य व प्रेरक प्रसंग आते हैं जब महान् विभूतियों की विशेष कृपा उन पर प्रत्यक्षतः हुई। पहला पं. गोपीनाथ कविराज (काशी) दूसरा श्रीहनुमानदास षडशास्त्री (काशी) तीसरा श्रीरामसुखदास गीता प्रेस (गोरखपुर) चौथा योगिराज श्रीरामदयालदास जी हरिद्वार।

काशी में अध्ययन करते हुए एक बार वह साधु श्रीरामभद्रदास के साथ आनंदमयी आश्रम वाराणसी पं. गोपीनाथ कविराज का दर्शन करने गए। पं. गोपीनाथ कविराज तंत्र विद्या के परम वाग्मी विद्वान् और साधक थे। उनकी साधना और ज्ञान-संपदा की चर्चा उस समय पूरे भारत में हुआ करती थी। तंत्र-मंत्र और रहस्य के निगूढ़तम गह्वरों में उनकी चेतना अहर्निश विचरण किया करती थी। अनेक योगी, विद्वान्, साधक, साधु-संत उनसे मिलने काशी आया करते थे। उस समय पूरे देश में वैसा विद्वान्, रहस्य विधा का पारखी और तंत्र साधना का साधक नहीं था। जब रामनरेशदास उनके दर्शन करने आश्रम पहुँचे तो उस समय वह रुग्णावस्था में चौकी पर बैठे हुए थे। उन्हें सेवाभावी सेविकाएँ चम्मच से कुछ खिला रही थीं। इन्हीं कविराज पर संतसाहित्य के अधीत् विद्वान् प्रो. भगवती प्रसाद सिंह ने 'मनीषी की लोकयात्रा' नाम से उनकी जीवनी हिन्दी में लिखी थी जिसका गुजराती, मराठी, अंग्रेजी और कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। कालांतर में यह जीवनी भी साधुरामनरेश दास ने पढ़ी और कविराज के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ती गई।

श्रद्धाभाव का एक समुद्र उनके हृदय में कविराज जी के प्रति पहले से ही उमड़ रहा था। जाते ही उन्होंने उन्हें प्रणाम किया। थोड़ी दूर पर अपने साधु मित्र रामभद्रदास के पीछे बैठ गए। कविराज जी ने उनकी शिक्षा-दीक्षा और परिचय के विषय में कुछ जानना चाहा। इन्होंने बताया भी। थोड़ी देर में कविराज जी ने उन्हें अपने पास बुलाया और सिर पर देर तक हाथ रखे रहे। उस समय यह स्पर्शन क्रिया रामनरेशदास को बहुत समझ में नहीं आई। बाहर प्रणामादि अभिवादन कर निकलते ही सेवाव्रती नारियों ने रामनरेशदास को आश्चर्य व विस्मित होकर पकड़ लिया और कहने लगी कि आप बड़भागी हैं, बड़े पुण्यशाली हैं। इस घटना को सुनकर सभी चौक जाते हैं। वर्षों बाद साधु रामनरेशदास ने उनके द्वारा लिखी पुस्तकों में पढ़ा कि यह एक प्रकार की दीक्षा है– जिसे स्पर्श दीक्षा कहते हैं– तो वह रोमांचित हो उठे। यह प्रसंग जब उन्होंने प्रो. भगवती प्रसाद सिंह को बताया तो उनकी आँखें प्रेमाश्रु से डबडबा गईं। रामनरेशदास के जीवन में यह घटना अद्‌भुत अपूर्व और ऊँचाई प्रदान करने वाली सिद्ध हुई– ऐसा उनका विश्वास है। यह उनके विनयशीलता से संभव हुआ। उनका कहना है कि उनके सद्‌गुणों का विकास उस घटना की ही देन हैं।

दूसरी चमत्कारी किन्तु शत प्रतिशत सत्य पर आधाररित घटना है जब उन्होंने हरिद्वार में श्री रामसुखदास का दर्शन किया। हरिद्वार में विद्यादान के प्रसंग में ही एक दिन श्रीसुरेशानंद जो वृक्ष पर अपना निवास बनाए थे। जंगल में ही रहते थे। अत्यंत बीतरागी और साधक महात्मा थे। उनके आदेश पर रामनरेशदास श्रीरामसुखदास से मिलने उनके आवास हरिद्वार गये। यद्यपि रामनरेशदास ने कहा कि वहाँ मुझे नहीं जाना है, पर सुरेशानंद जी के आदेश की अवहेलना वह कैसे कर सकते थे? गये। वहाँ रामसुख दास बैठे मिले। प्रणामाभिवादन के बाद परिचय हुआ। शिक्षा पूछे। बताया न्यायशास्त्र। श्रीरामसुखदास ने कहा कि कुछ पूछिए इस पर रामनरेशदास ने विनम्रता से कहा कि मैं तो आप को प्रणाम करने आया हूँ। फिर स्वयं उन्होंने ही न्याय शास्त्र से सम्बंधित किया। रामनरेशदास दो प्रश्न ने दोनों प्रश्नों का उत्तर बड़ी सहजता से दे दिया। पहला प्रश्न था– २१ दुखों का नाश ही मोक्ष है– स्पष्ट करें और दूसरा प्रश्न था ईश्वर के गुण क्षण में सगुण निष्क्रिय और क्षण भर में ही निर्गुण हो जाते हैं– इसका क्या तात्पर्य है? उनका उत्तर सुनकर रामसुखदास अत्यंत प्रसन्न हुए और कहा कि आते रहिए। मुलाकात होनी चाहिए। वह सुख्यात संत साधक और भक्त के रूप में पूरे सनातन धर्म में

जाने जाते हैं। वह रामसनेही सम्प्रदाय में दीक्षित थे। कहा जाता है कि एक बार कलकत्ते में उनका प्रवचन सुनकर ढाई लाख रामचरितमानस की प्रतियाँ एक ही दिन में बिक गईं थीं।

रामनरेशदास की उनसे दूसरी मुलाकात जोधपुर में हुई जब वह ज.गु. रामानंदाचार्य के पद पर अभिषिक्त हो चुके थे और किसी कार्यक्रम के सिलसिले में जोधपुर गए थे। वहाँ रामसुखदास ने उन्हें साष्टांग दण्डवत कर सनातन धर्म की मर्यादा का पालन किया। श्रीरामनरेशदास को इस घटना ने विशेष प्रभावित किया। उनकी साधुता के विकास में रामसुखदास के इस मिलन का विशेष महत्त्व है।

तीसरी घटना जो रामनरेशदास को अत्यंत प्रभावित कर सकी वह थी योगिराज रामदयालदास महराज का दर्शन। वह हरिद्वार के साधकों में अत्यंत मर्यादित और संयमित जीवन जीने वाले महात्मा थे। उन्होंने एक बार भागवत कथा सुनने की इच्छा साधु रामनरेशदास से व्यक्त की। उन्होंने मूल पाठ की कथा सुनायी। इससे योगिराज इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्हें अपने आश्रम का ट्रस्टी बना दिया। साधु-साधक योगिराज महाराज का यह आशीष रामनरेशदास के जीवन में एक नव्य आलोक बन कर फैल गया। उसकी अमिट छाप उनके जीवन की धरोहर बन गई।

चौथा महत्त्वपूर्ण क्षण साधु रामनरेशदास के जीवन में तब आता है जब श्रीहनुमानदास षडशास्त्री का दर्शन वह बनारस में करते हैं। वह कबीर पंथ के ऐसे विद्वान थे जो शताब्दियों में कभी-कभी उत्पन्न होते हैं। कबीर पंथ को संस्कृत की आचार्य परम्परा से जोड़ने में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कबीर की रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद किया। हिन्दी-संस्कृत में उसका भाष्य किया। वह पांडित्य और ज्ञान की परिपक्वावस्था तक पहुँचे महात्मा थे। उनके जैसे साधु चरित्र के महात्मा अब दिखायी ही नहीं पड़ते। वह परोक्ष व अपरोक्ष ज्ञान को चरितार्थ कर चुके थे। उनकी चरित्र निष्ठा, ज्ञान के प्रति बलवती स्पृहा, विद्वता के प्रति आत्यंतिक अनुराग, शुचिता और चेतना की ऊर्ध्वगामिता ने साधु रामनरेशदास को हृदय तक प्रभावित किया। पहुँचने पर व्यास की परम्परानुसार आसन पर सिर रखकर साधु रामनरेशादास को प्रणाम करते हैं और कहते हैं कि संन्यास मार्ग अब कठिन भी है और वर्जित भी। अनेक भौतिक बाधाएँ हैं जो संन्यासपन को प्रभावित करती है। अत: संन्यासी न बनना ही उचित है।

काशी में धर्म सम्राट करपात्री महाराज के निंदक हो सकते हैं, पर हनुमानदास षडशास्त्री के नहीं। ऐसे अजात शत्रु, आजानुवाहु, छह विषयों में

शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण श्रीहनुमानदास का साधु रामनरेशदास के जीवन को समुत्कर्ष प्रदान करने में अविस्मरणीय योगदान है।

श्रीरामनरेशदास के जीवन में जिन संतों की सत्संगति से एक दैवी प्रकाश फैला उनमें उदासीन सम्प्रदाय के महासंत पुरुषोत्तम दास अवधूत भी थे। वह पंजाब प्रांत के किसी सुदूर अंचल में रहते थे। उनकी साधना और शास्त्राध्ययन दोनों उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ था। आश्रम पहुँचते ही उन्होंने रामनरेशदास से अनभिज्ञ होते हुए भी प्रवचन के लिए आग्रह किया। उन्होंने कहा कि, मैं तो आप का दर्शन करने आया हूँ। बीच ही में किसी द्वारा रामनरेशदास का उच्चारण करते ही अवधूत जी उछल पड़े, कहने लगे "आप ही रामनरेशदास हैं? धन्य हो गया मैं। बहुत दिनों से आप की चर्चा सुनता रहता था। "फिर क्या था? उन्होंने पाँच घण्टे तक रामनरेशदास को बैठाए रखा। बीच में वार्ता करते समय रामनरेशदास ने एक श्लोक का उच्चारण किया जिसका आशय था कि छोटी चीजे बड़ी के लिए त्याग देनी चाहिए। उसी क्रम में अंतिम वाक्य था– आत्मार्थे पृथवीं त्यजेत्'। यह सुनते ही अवधूत जी प्रसन्न हो गए और कहने लगे कि यही श्लोक पढ़कर मैंने घर त्याग दिया था। इस प्रकार की दैवी अनुभूति रामनरेशदास के जीवन में अविस्मरणीय घटना बन गई। पुनः उनका दर्शन नहीं कर सके किया भी तो ज.गु. रामनरेशाचार्य बनने के उपरांत वह भी अचेतावस्था में।

काशी में अध्ययन करते समय शास्त्र निष्णात पं. वामदेव शास्त्री का सत्संग तो रामनरेशदास के जीवन में एक प्रकाश ही भर गया। पं. वामदेव से पुरी के शंकराचार्य निश्छलानंद सरस्वती ने भी विद्या अर्जित की थी। वैशेषिक दर्शन के प्रसंग में पं. वामदेव जी किसी को पढ़ा रहे थे। रामनरेशदास के मुख से वह सूत्र सुनकर वह उछल पड़े और आशीष दिया कि "रामनरेशदास से सनातन धर्म का बड़ा कल्याण होगा।" इनके आशीष से रामनरेशदास के जीवन में उत्कर्षता का आभास हुआ।

हरिद्वार में उदासीन संत चतुरदास की सत्संगति श्री रामनरेशदास के जीवन में एक नया सबेरा लेकर आई। वे पैदल ही चलते रहते थे। तत्कालीन संतों में वह साधुता की कसौटी थे। रामनरेशदास को पंडित जी कह कर पुकारते थे। उनका सत्संग देहरादून में एक सप्ताह तक निरंतर होता रहा। उनके ममत्व व आत्मीयता से रामनरेशदास का जीवन प्रेरणा से भर उठा।

श्री श्यामाशरण जी रामनरेशदास के सहपाठी थे पर अवस्था में बहुत बड़े थे। सर्वाधिक सत्संग रामनरेशदास ने उन्हीं के साथ किया था। श्यामाशरण जी

१०१ बार गुरुग्रंथ साहब का पाठ कर चुके थे। काशी में भागवत बन गए। उनके सत्संग से रामनरेशदास इतना प्रभावित थे कि उनकी इच्छानुसार विरक्तों का बहुत बड़ा समारोह बृंदावन में किया। उनका त्याग, निरभिमानी व्यक्तित्व, प्रेममयी बातें, ईश्वराधन से रामनरेशदास गहराई तक प्रभावित थे। आज भी रामनरेशदास उन्हें बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं।

हरिद्वार से विदा होते समय महामंडलेश्वर श्रीविद्यानंद जी से रामनरेशदास ने अनुमति माँगी। वह संन्यासी परम्परा के भास्वर प्रकाश थे। उनकी ही देख-रेख में कैलास आश्रम से विद्या, तप साधु सेवा, लोककल्याण और धर्म के अनुष्ठान सम्पन्न होते थे। उन्होंने अपने अत्यंत आत्मीय रामनरेशदास से प्रति उत्तर में कहा कि "जाइए– वह पद, पदवी और प्रतिष्ठा की दृष्टि से बड़ा है। उद्देश्य इसका भी बड़ा है। उस पद को विभूषित करने में, लोक कल्याण यहाँ की अपेक्षा कई गुना अधिक दिखायी पड़ता है।" यह सलाह रामनरेशदास शिरसा स्वीकार कर मठाश्रम के मित्रों, विद्यार्थियों जन-परिजन, परिचित सबसे विदा लेकर काशी की ओर उन्मुख हो गये। विदाई के समय चिन्मयानंद के गुरुभाई अवधूत जी, समाज के श्रीसंतराम गोयल जैसे और कुछ शिष्य भक्त तथा त्रिवेणी धाम के श्री मं. नरायणदास ने विदाई का सारा कार्य-भार वहन कर लिया और उसके पूर्व ही घोषित कर दिया था कि श्रीरामनरेशदास जिस प्रकार का भी विदाई समारोह करना चाहें कर लें। इस आश्वस्ति ने साधु रामनरेशदास को काफी कुछ मानसिक रूप से हल्का कर दिया। विदाई में ब्राह्मण, उनके शिष्य, साधु व आमजन उमड़ पड़े। यहाँ तक कि परिचर आश्रम के बाहर से ही सपरिवार आँखों में अश्रु लिए खड़े थे। उसी दिन रुद्राभिषेक का एक बड़ा कार्यक्रम था जिसमें संतराम गोयल उपस्थित थे।

विदाई में ब्राह्मण,समाजसेवी, पत्रकार, साहित्यकार थे। स्वयं मं. नारायणदास भी सदलबल थे। पत्रकार कमलकांत बुधकर ने कहा कि "बड़ी बिडम्बना है कि अपने आत्मीय लोगों के विलग होने का भी दिन सुनिश्चित होता है। कष्ट होता है, हृदय फटा जाता है पर इसे तो स्वीकार करना ही है। आज का क्षण भी उसी प्रकार का है। कैलास आश्रम के दूसरे बड़े अधिकारी महंत ने कहा कि "क्या तुम (रामनरेशदास) हमें यह कष्ट देने के लिए ही यहाँ आए थे।" सफाई कर्मी अलग, साधु अलग, महंत अलग विदाई की वेदना से बिलख रहे थे। वैराग्य, संन्यास या साधु भाव मनुष्य की सहजात प्रवृत्तियों से श्रेष्ठ नहीं होते हैं। ऋषिकण्व के आश्रम से शकुंतला के विदा होने में जब ऋषियों का मन आर्द

हो जाता था तो एक वैरागी-अध्यापक बहुतों के मित्र, उदारमना व्यक्तित्व से सम्पन्न, विद्वान रामनरेशदास के विदा क्षणों में कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा जो पिघल न जाए। ऐसा ही हुआ। साधु रामनरेशदास ने रुधे गलों से यह कहते हुए कि आने पर पुनः मिलूँगा 'महाभिनिष्क्रमण' कर गये। वहाँ सबके अहम प्रेमाश्रु बनकर बह चले। ऐसे अद्‌भुत क्षण शताब्दियों में ही आते हैं। विदा होते समय कारुणिक दृश्य और जनसंकुल को देख कर वहाँ के वासियों ने कहा कि ऐसा जनसमुद्र तो हरिद्वार में पहली बार दिखा।

हरिद्वार वासियों से विदा लेते समय साधुरामनेरश दास ने कहा कि "काशी-ज्ञान-विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और संस्कृत की नगरी है। वहाँ मुझे गुरु आश्रम मिल गया है। रामानंदाचार्य मूलपीठ की सेवा मिली है। मैं यहाँ आने के पूर्व वहाँ पढ़ता भी था और पढ़ाता भी था। मुझे न कोई वहाँ का घाट अपरिचित है न गली– मुहल्ले, आश्रम। महादेव जी ने मुझे वहाँ से यहाँ भेजा था। कैलास आश्रम मेरे अध्यापन व साधु जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। अब यहाँ से वहाँ अपनी सेवा कराना चाहते हैं। यह मेरे जीवन का धन्यतम क्षण है।" सभा समाप्त होते ही साधु रामनरेशदास महंत नारायणदास के लाव लश्कर के साथ जयपुर (शाहपुरा) चले आए। यह सब घटित होने की तिथि ४/१२/८८ है। ११/१२/८८ को काशी में जगद्‌गुरु रामानंदाचार्य पद पर अभिषेक का महोत्सव सुनिश्चित था।

काशी में तो मानों श्रीराम जंगल से आयोध्या आ गए हों। इस प्रकार का उत्साहपूर्ण वातावरण था। श्री अवधबिहारी जी के देख-रेख में यह कार्यक्रम काशी में पहले से ही चल रहा था। सब तैयारी प्रायशः पूरी हो गई थी। काशी में रामानंदाचार्य पद की पूरी ट्रस्टी टीम पहले से ही डेरा डाले पड़ी थी। रामनरेशदास शाहपुरा से सीधे ८/१२/८८ को काशीस्थ रस्तोगी धर्मशाला में आकर ठहर गए थे।

काशी में पंचगंगा घाट का श्रीमठ एक महोत्सव का रूप पकड़ चुका था। विद्वान् संत, मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर, ब्राह्मण, बटुक, गण्यमान नागरिक गण आबाल, बृद्ध, नर-नारी सभी वहाँ उमंग में उमड़ते हुए पहुँच रहे थे। साधुरामनरेश दास अपने पूर्व प्रिय घाट दशाश्वमेध पर स्नान किए, और क्षौर कर्म सम्पन्न हुआ। संकटमोचन हनुमान का दर्शन कर आशीर्वाद लिये। सभी पूर्व परिचित तो थे ही भक्त मंडली की अपार भीड़ भी थी। उसी में प्राच्य विद्या के महारथी सहपाठीवत गणेश्वर शास्त्री द्रविड़ से मुलाकात हुई। रामनरेशदास का

पूजन हुआ। देवतादि की वंदना हुई। पाञ्चजन्य सरीखा शंख द्वारा जयघोष हुआ और अभिषेक पूर्ण हो गया। इतनी बड़ी गादी के लिए यह समारोह छोटा ही कहा जाएगा। फिर भी मेरे पूर्व के मित्र शारदानंद जी ने रविवार रहते हुए भी अभिनंदन पत्र की समुचित व्यवस्था कर दी– मानपत्र पढ़ा गया। तत्कालीन रामानंदाचार्य शिवरामाचार्य पहले गादी से हटने की बात किए पर कुछ लोगो के धार देने के कारण वह अखबारों में नवाभिषिक्त रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य के विरुद्ध बयान देने लगे।

श्रीरामनरेशदास का रामानंदाचार्य पद पर अभिषेक होते समय उन्हें उत्तरीय, माला, दक्षिणा प्रदान कर चंदन का टीका लगाया गया। तत्पश्चात् यह प्रस्ताव आया कि रामानंदाचार्य को ट्रस्ट का अध्यक्ष बनाया जाय– सर्वसम्मत से यह भी तय हो गया। इस पूरे समारोह का व्यय त्रिवेणी धाम के श्रीनारायण दास ने ही किया। भण्डारा एक दिन संतों-महंतों, साधुजनों और सम्प्रदाय के लोगों का हुआ। दूसरे दिन चिरपरिचितों, भक्तों, ब्राह्मणों, नगर के प्रतिष्ठित जनों, तमाम प्रकार के सेवाभावी लोगों का हुआ। भण्डारे में किन-किन पकवानों की सूची रहेगी– यह स्वयं ज.गु.रा. श्रीरामनरेशाचार्य ने बनाई। भण्डारे की पहली सूची कार्यक्रम के हिसाब से छोटी थी– जिसे म. नारायणदास और सम्प्रदाय के गुजरात स्थित आश्रमों ने बनाया था– जिसमें म. बलराम दास की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी।

उस दिन अभिनव रामानंद ज.गु.रा. श्रीरामनरेशाचार्य ने अपने प्रथम प्रवचन में कहा कि– "मुझे संतों, साधुओं, महामंडलेश्वरों और सभी ने जो सेवा का भार दिया है– उसे प्राणपण से पूरा करूँगा। ऐसे अवसर पर मैं सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। यहाँ के आश्रमों के प्रति जहाँ पढ़ा और पढ़ाया तथा कैलास आश्रम हरिद्वार के प्रति जहाँ मेरी विद्या का वर्चस्व और बढ़ा। मुझे कहना है कि श्रीमठ के लुप्त स्वरूप और महत्त्व को उजागर करने का प्रयास करूँगा। नये आश्रम व मठ बनाना मेरी प्राथमिकता में नहीं है। रामानंद सम्प्रदाय तो वैसे भी बहुत विस्तृत है। इस विस्तार का सही प्रबंधन, सुव्यवस्था और उत्कर्ष ही मेरे रामानंदाचार्य जीवन का उद्देश्य होगा। शंकराचार्य की भाँति रामानंदाचार्य को भी लोग जाने– यह प्रयास होगा। आज की तिथि में मैं मजबूत हूँ और यह 'पद' कमजोर है। मेरा व्यक्तित्व बड़ा है। इसका उपयोग मैं अपने अहम के बढ़ाने में नहीं; अपितु सम्प्रदाय के सम्बर्द्धन में करूँगा। इसकी प्राचीनतम गरिमा को संरक्षित और सुरक्षित रखने में ही अपनी शक्ति का उपयोग करूँगा। अब तो

कैलास आश्रम से ऊँचे महाश्रम में आ गया हूँ– यह तो रामानंद सम्प्रदाय का मूल है। सबको धन्यवाद।"ट्रस्ट के इस प्रस्ताव को कि शपथ लिखिए रामनरेशाचार्य ने पहले ही यह कह कर लोगों को अपनी दृढ़ता का आभास कर दिया कि "मेरे ऊपर विश्वास करें।"

दूसरे दिन विद्वत् सभा हुई। सबको यथोचित सम्मान देते हुए विदा किया गया। त्रिवेणी धाम के महंत जी जो रामानंदाचार्य पदाभिषेक में रीढ़ की हड्डी की तरह थे वह पदाभिषेक के दिन विलम्ब से आए और दूसरे दिन तो अपने आश्रम शाहपुरा जयपुर चले गए जिसका औचित्य नहीं बनता था। प्रतिष्ठापकों में सोच और विचार के इस अभाव ने रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य को सतर्क और सजग बना दिया था।

साधु श्रीरामनरेशदास का रामानंदाचार्य पद पर अभिषेक ११/१/१९८८ को रामानंद जयंती पर होने के उपरांत रामानंद सम्प्रदाय का नागा समुदाय आक्रोश से भर उठा। वस्तुत: नागा सम्प्रदाय की संस्थापना स्वामी रामानंद जी ने सनातन धर्म की रक्षा हेतु किया था। बीच में केन्द्रीय संगठन (आचार्य परम्परा) के कमजोर हो जाने पर अनेक विकृतियाँ नागा सम्प्रदाय में भी प्रविष्ट कर गईं। धनलोलुप दृष्टि, स्वार्थपरक विचारधारा, जातीय संकीर्णता में नागाओं के अधिकांश अखाड़े उलझते चले गये। अत: सैनिकत्व की प्रतिष्ठा से परिपूर्ण नागा सम्प्रदाय अब किसी भी बड़े संत से अर्थ पाने की प्रत्याशा में समर्थन व विरोध करने लगे। जाति विशेष के नाम पर प्रतिरोध का एक प्रवंचनापूर्ण मंच बन गया और वर्तमान रामानंदाचार्य का विरोध होने लगा। ये नागा सम्प्रदाय के साधु स्वामी रामानंद की उस मूल चेतना को भी विस्मृत कर गए जिसमें प्रपत्ति के अन्तर्गत भक्ति के सभी अधिकारी हैं ऐसी घोषणा की गई थी।

जातीय संकीर्णता, धन के प्रति लिप्सा और धर्म की मूल चेतना से च्युत होने के कारण अयोध्या स्थित कुछ नागाओं ने जो अखाड़ा परिषद् में बाहुबल के आधार पर पदों पर कब्जा जमाए बैठे हैं– वे नये रामानंदाचार्य को सहन ही नहीं कर सके। अत: अनेक प्रकार के वितण्डावाद द्वारा उनका विरोध करने लगे और वर्तमान रामानंदाचार्य को अपदस्त करने के लिए अनेक प्रकार की कुटिल योजनाएँ बनाने लगे। नकली रामानंदाचार्यों की घोषणा उत्कोच के आधार पर होने लगी। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने रामानंदाचार्य के रूप में इन विकृतियों का धार्मिक प्रवृत्तियों के सहारे विरोध किया। इस मानसिक द्वन्द्व में भी उनका स्वाध्याय-

प्रवचन चलता रहा और नागाओं को आगे कर गर्हित स्वार्थ साधन वाले ब्राह्मणों का विरोध भी। फिर भी श्रीमठ की आध्यात्मिक, धार्मिक और भौतिक आलोक का फैलाव होता ही गया। श्रीमठ में वर्तमान रामानंदाचार्य की साधना, उनके साथ देश के विभिन्न साधु-संतों के आगमन, अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों के सम्पादन में व्यय-भार बढ़ता गया। व्यवस्थापक श्री अवधविहारी दास ने मेहसाणा के पास लोदरा के श्रीमहंत और रामानंदाचार्य ट्रस्ट के एक प्रमुख स्तंभ सदस्य श्रीबलरामदास से व्यय सीमा बढ़ाने व अतिरिक्त धन प्रदान करने की प्रार्थना की जिसे उन्होंने तुरंत अस्वीकार कर दिया।

भौतिक दारिद्र्य की यह अनकही कहानी चल ही रही थी कि जगद्गुरु रा. श्रीरामनरेशाचार्य ने मूल पीठ श्रीमठ काशी में ही छह माह तक जप-तप की शुरुआत कर दी। वाल्मीकि रामायण का पाठ निरंतर चलने लगा। उनका अटल विश्वास था कि इससे सभी सिद्धियाँ स्वयमेव मिलती जाएँगी। हुआ भी यही। कुछ दिनों बाद त्रिवेणी धाम के श्रीमहंत ने रामदास नामक महात्मा को ५ हजार का चेक और श्रीमठ के लिए जितने और जिस प्रकार के सामान की जरूरत हो खरीदने का प्रस्ताव रखा। उस समय अवधबिहारी दास नहीं थे अतः महराजश्री ने ही वस्तु सूची बना दी। सामान इतने आ गए कि भाण्डार भर गया। अवधबिहारी दास विस्मिति के साथ मन ही मन खिन्न भी हुए कि बिना उनकी योजना के यह सब कैसे हो गया? महाराजश्री को यह आभास पहले से ही था कि श्रीमठ के हनुमान हैं– यह सब सिद्ध देव उन्हीं की कृपा है।

रामानंदाचार्य के पद पर अभिषिक्त होने के उपरान्त उन्हें शयन करने के लिए जो चौकी मिली थी वह तीन अनमेल पटरों से बनी थी। तिलचट्टे उसमें स्थायी निवास बना चुके थे। फिर भी महाराज श्री के मन में भौतिक सुख, स्थान, शयन चौकी और निर्धनता को लेकर कभी हीन भाव नहीं उत्पन्न हुआ कि इसे छोड़ दिया जाय या स्थान ही बदल दिया जाय। श्रीमठ व स्वामी जी की सेवा का जो अवसर उन्हें प्राप्त हुआ था वह उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। सहपाठी साधु गोदावरी के आग्रह पर उन्होंने चौकी बदली। उसी समय पंजाब के सामाना इत्यादि स्थलों से भक्तों का एक रेला आया जिसमें महेन्द्र मित्तल-कुरुक्षेत्र के दादा-दादी-माता-चाचा-चाची सभी आए। महोत्सव मर्यादा के साथ संपादित हुआ। चढ़ाए गए कपड़े विद्यार्थियों में बाट दिए गये। यह जानकर व्यवस्थापक श्री अवधबिहारी दास प्रसन्न नहीं हुए। इस प्रकार पहला चातुर्मास काशी में ही सम्पन्न हुआ।

रामानंदाचार्य के रूप में श्रीरामनरेशाचार्य जी को पहली बार अयोध्या में रामायण मेला के उद्घाटन में मुख्य अतिथि के रूप में जाने का संयोग बना। वहाँ छोटी-छावनी में डेरा डाला। सदलबल जाने पर पचास लोगों की संख्या एक साथ थी। श्रीरामचंद्र परमहंस जो रामजन्म भूमि मुक्ति मोर्चा के नायक थे रामानंदाचार्य को पाकर धन्य हो गए और साष्टांग प्रणाम किया। रामायण मेला के उद्घाटन अवसर पर महाराजश्री ने कहा कि– "मेला का अर्थ मिलना-मिलाना होता है। मिलने पर सृष्टि और बिछुड़ने पर मृत्यु का क्रम आता है। सृष्टि का संचालन आकाश-वायु इत्यादि के मिलन से ही संभव होता है। विकास के लिए ही मेल होता है। ऐसे में ईश्वर और जीव का मिलना ही मेला है। रामावतार में ईश्वर व आत्मा का सबसे बड़ा मेला सम्पन्न हुआ। यह मेला उसी का प्रतीक है यहाँ के लोग उसी राम के प्रतिनिधि हैं और सरयू नदी इन सभी घटनाओं की साक्षी हैं। गोपी-कृष्ण के मिलन की लीला सभी जानते हैं। उस समय कृष्ण मात्र ग्यारह वर्ष के थे। सृष्टि के योग्य नहीं थे। राम का मेला तो जीवन की धन्यता को प्रकट करता है– **'छन में मिलहिं राम भगवाना।'** अत: सबसे मिलें, सबसे प्रेम करें। यही रामायण मेला का निहितार्थ है।" इस प्रवचन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा हुई। मंच पर ही श्रीरामचंद्र परमहंस ने रामानंदाचार्य की खड़ाऊँ अपने सरमाथे लगाकर। रामानंद सम्प्रदाय की मर्यादा और प्रतिष्ठा को चार चाँद लगा दिया। उसी रात्रि सभी लोग काशी आ गए। दूसरे दिन नागाओं ने अमर्यादित व्यवहार का प्रयोग करते हुए हंगामा खड़ा कर दिया।

काशी लौटने के उपरांत कुछ दिनों अनंतर त्रिवेणी धाम शाहपुरा (जयपुर) जाना हुआ। वहाँ रामानंदाचार्य ट्रस्ट के अखिल भारतीय पदाधिकारीश्रीनारायणदास का आश्रम है। कुछ दिन रुकने के बाद सदलबल-पंजाब की यात्रा पर चले गये। वहाँ महीनों का कार्यक्रम था। अत: प्रथमत: कैलास आश्रम में रुकने की चर्चा चली जिसे तत्कालीन प्रबंधक ने मना कर दिया। फिर तो 'अग्रवाल धर्मशाला' में ठहरने की व्यवस्था हुई। कैलास आश्रम के महामंडलेश्वर को बुरा न लगे इसलिए 'सामाना' से थोड़ी दूर धूरी में आसन जमा। जहाँ टेकचंद ने व्यवस्था की थी।

धार्मिक प्रवृत्तियों का सम्पादन करते, भक्तों को प्रवचन देते एक सप्ताह बीत गया। कालांतर में पुन: 'सामाना' आना हुआ। वहाँ की भव्य तैयारी देखकर लोग चकित रह गए। अध्यापक साधूराम शर्मा ने पूरे कार्यक्रम की सुगठित व्यवस्था कर दी। शोभा यात्रा उस समय तक वहाँ वैसी नहीं निकली थी। श्री

संतराम मित्तल अपने समस्त जन-परिजनों के साथ उपस्थित थे। रामानंदाचार्य बनने के बाद यह पहली धार्मिक आध्यात्मिक यात्रा सम्पन्न हुई जो हर दृष्टि से अनुपमेय थी। इस सत्संग में बड़े आचार्य आए। बड़ा आयोजन हुआ। धर्ममय लहर दौड़ने लगी। तन से- मन से धन से सेवा हुई। साधूराम शर्मा की कर्मठता और उनकी लगन के सभी लोग उनके प्रशंसक बन गए। इस कार्यक्रम से श्रीमठ, रामानंदाचार्य और सनातन धर्म का उत्कर्ष इतिहास के पन्नों में दर्ज कर लिया गया। सामाना मंडी में तो वर्षों तक धर्म की इस छाया ने लोगों को भौतिक संताप से बचाए रखा। इसी बीच शिवरामाचार्य का देहांत हो गया और सम्प्रदाय के वरिष्ठ संतों से मंत्रणा करने के बाद स्वामी रामनरेशाचार्य काशी-वापस आ गए।

विदाई का अद्भुत दृश्य था।गाड़ी प्रात: तड़के थी। अत: वहाँ भक्तों का अद्भुत मेला लग गया। काशी वापसी में आचार्य परम्परा के अनुसार विधि विधान से सभी कार्यक्रम सम्पन्न हुए। विशाल भण्डारा हुआ जिसमें पूरे देश से संत पधारे। पूर्व रामानंदाचार्य की अन्त्येष्टि अयोध्या में ही कर दी गई थी क्योंकि वहीं उनका साकेत गमन हुआ था।

श्रीमठ काशी में सेवाभाव करते हुए कुम्भ पर्व सन्निकट आता गया। रामानंदाचार्य ट्रस्ट के कई ट्रस्टी सदस्य और अपने निकटस्थ लोगों ने कुम्भ में न जाने की सलाह दी। उसका सबसे बड़ा कारण था कुम्भ मेला में नागा साधुओं का विरोध और धन का अभाव। फिर भी रामानंदाचार्य ने कहा कि "नहीं हम सब चलेंगे। आत्मविश्वास के साथ चलेंगे। कोई कुछ नहीं कर सकता। हम तो रामजी और स्वामी जी की सेवा का व्रत ले चुके हैं– इसमें ये भौतिक झंझावात नगण्य हैं।" सदलबल सभी लोग कुम्भ गए। वहाँ सुदूर एक भूमि मिली। जहाँ कैम्प करना था। वह छोटी थी फिर भी वहीं वैरागी जमात डेरा डाल दी। उस जमीन की नाप ५०/२०० थी। स्वामीजी इससे संतुष्ट नहीं हुए। मेला में उनका प्रवेश मकर संक्रान्ति स्नान के पूर्व ही ९/१/८९ को हो चुका था। पदाभिषेक होते ही जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने श्रीमठ केन्द्रित एक पुस्तक भी प्रकाशन हेतु तैयार करायी। इसकी पूर्व योजना १९८८ से ही चल रही थी। फरवरी १९८९ में इसका विमोचन कुम्भ मेला में ही सम्पन्न हुआ। जमीन छोटी होने के कारण जगुरा ने म० नृत्यगोपालदास के कैम्प से सटी जमीन की बात की। वे स्पष्ट इनकार कर गए और टिप्पणी भी किए कि अयोध्या में रहकर नागाओं से विरोध करना असंभव है। यद्यपि अयोध्या के नागा कभी भी रामानंद का विरोध प्रत्यक्ष रूप में नहीं किए।

छोटी छावनी के महंत के इस जवाब से जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य को बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने अयोध्या की भरी सभा (१९९० ई.) में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए ऐसे लोगों को हिजड़ा की उपाधि दे दी।

जगद्गुरुरामानंदाचार्य ही रामनरेशाचार्य का यह प्रथम कुम्भ अनेक भौतिक झंझावातों से भी हिल न सका। पूरे मेले में नागाओं का आतंक व्याप्त था। समर्थक साधु-संत भी चुप रहने में ही अपनी कुशलता समझ रहे थे। पूरा मेला में सन्नाटा पसरा था। धनाभाव-जनाभाव पर महाभाव से परिपूर्ण यह कुंभ रा. श्रीरामनरेशाचार्य के लिए एक चुनौती था। इसी बीच संतराम गोयल के सौजन्य से एक ट्रक खाद्य एवं जरूरी सामग्री कुम्भ के लिए सामाना (पंजाब) से आई। फिर तो हौसला भी बढ़ा और कार्य करने की क्षमता भी। बगल की भूमि पर टेन्ट लगा और कैम्प का क्षेत्रफल अब १००/२०० हो गया। वहीं रैवासा पीठाधिपति राघवाचार्य और अयोध्या के परम संत विद्वान रामकुमार भी आ गए। मेला के साथ कैम्प भी जमने लगा। सामने रामानंदी त्यागी संतों का बड़ा कैम्प लगा था जिसके श्रीमहंत रामसेवक दास उपाख्य 'काका जी' थे। उन्होंने इस तपस्या में बहुत सहायता किया। फिर भी पूरे मेला क्षेत्र में यही खबर तैर रही थी कि वह (श्रीरामनरेशाचार्य) अपदस्थ होंगे। 'उनका' अभिषेक होगा। यद्यपि नागाओं में भी सही तत्त्व वर्तमान आचार्य के साथ ही थे पर सक्रिय नहीं थे। रामकृपालदास ठाकुर, रामकृपालदास पगला, नागा त्रिभुवन इत्यादि ज्ञानदास के विरोधी थे। ये सभी स्वामी जी के साथ थे। उसी बीच श्रीमठ के प्रधानमंत्री म. मंडलेश्वर गोपालदास-कल्लोल गुजरात कुछ धनादि देकर कुंभ व्यवस्था में गति ला दी। तत्कालीन मेलाधिकारी भी नागाओं से सहमें थे। वे भी सत्य के साथ नहीं खड़े हो सके। मेले में हर्याचार्य को जगद्गुरुरामानंदाचार्य बनाने की चर्चा जोरों पर थी।

प्रयाग कुम्भ में ही हरिदास को ज.गु.रा. हर्याचार्य के रूप में पदाभिषिक्त कर दिया गया था। यह समाचार कुम्भ में अग्नि की तरह फैल गया। उनका पदाभिषेक धर्माचार्य की मर्यादा के रूप में नहीं हुआ। एक कमरे में अयोध्या नागाओं के कुछ तथाकथित पदाधिकारियों ने उनका पूजन इत्यादि कर रामानंदाचार्य की घोषणा कर दी। जगुरा. श्रीरामनरेशाचार्य ने इस समाचार का खण्डन किया। फिर भी यह मेला का सबसे बड़ा समाचार तो बन ही गया। वर्तमान रामानंदाचार्य ने इस कटु और दमघोंटू वातावरण से निकलने के लिए रामनाम जप' का अनुष्ठान प्रारंभ करा दिया। पूरा वातावरण ही बदल गया। अब अखाड़ों के सामने सबसे बड़ी समस्या

यह थी कि किस रामांदाचार्य को स्नान कराया जाय? तीन वैष्णव अखाड़ों में दिगम्बर महत्त्वपूर्ण माना जाता है– वह जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य को स्नान कराने का प्रस्ताव पास कर सदलबल तैयार हो गया। वहाँ छोटी छावनी के महंत भी उपस्थित थे। यह मौनी आमावस्या का प्रमुख स्नान था। कुछ अखाड़े नव नियुक्त धर्माचार्य को स्नान कराने की योजना बनाने लगे। इसी खींचतान में १९८९ का कुंभ स्नान ही नहीं हो सका। यह हिन्दू समाज के लिए एक विस्मयकारी दिन था तो श्रीमठ की नैतिकता की प्रकारांतर से विजय थी।

खालसा पंथ के कुछ संतों ने इस घटना से क्षुब्ध हो अपना अलग संगठन बनाने की घोषणा कर दी और जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की मूल पीठ के आचार्य के रूप में बंदना की। अखाड़ों की वर्चस्ववादी नीति के कारण कई लोग नाराज थे। पर शीघ्र ही समझौता हो गया। धीरे-धीरे नागाओं की वृत्ति शोषण प्रधान होने लगी। सम्प्रदायाचार्य के स्नान के नाम पर वाह्याडम्बर बढ़ाया गया। व्यय की अधिकता का औचित्य सिद्ध किया जाने लगा। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य आज तक इसके विरुद्ध खड़े हैं और कहते हैं किसी की आराधना विनय शीलता में की जाती है न कि शाही रूप में। इस प्रकार वसंत पञ्चमी तक प्रयाग में आचार्य जी निवास करते रहे। तदनंतर वह श्रीमठ आ गए। इस बीच रामानंदाचार्य ट्रस्ट के बड़े अधिकारी, साधु, महंत, मंडलेश्वर प्रयाग की घटना पर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त किए। इस व्यवहार से जगुरारामनरेशाचार्य अपने ट्रस्टियों से खिन्न रहने लगे।

प्रयाग कुम्भ के बाद बिहार की पहली यात्रा सम्पन्न हुई। प्रतिष्ठित होटल व्व्सायी श्री यमुना सिंह के आग्रह पर महाराजश्री का एक मंदिर के लोकार्पण समारोह घोसवरी बख्तियारपुर पटना में भव्य कार्यक्रम हुआ। बिहार की भूमि रामानंद सम्प्रदाय की ऊर्बरा शक्ति से परिपूर्ण है। इसका प्रमाण इसी से मिलता है कि महाराज श्री के बिहार में प्रवेश करते ही शंकराचार्य जैसा सम्मान होने लगा। रामानंद सम्प्रदाय का उद्घोष बिहार की भूमि पर पुन: तीव्रता से होने लगा। सम्पूर्ण कार्यक्रम विधिवत सम्पन्न हुआ। इस यात्रा से श्रीमठ काशी, रामानंदाचार्य और सम्प्रदाय की एक नव प्रतिष्ठा स्थापित हुई।

कुम्भ के बाद बिहार और उसके बाद श्रीमठ में महाराज श्री का आगमन हुआ। श्रीमठ में ही रामानंदाचार्य ट्रस्ट कमेटी की पहली और संभवत: अंतिम बैठक हुई। इसमें श्रीनारायणदास त्रिवेणी धाम, बलरामदास, गोपालदास, गुजरात, विष्णुदास जी सूरत, श्री रघुवंश भूषण, ईश्वरदास काशी तथा हरीदास प्रमुख सदस्य उपस्थित

थे। हरीदास प्रखर वक्ता और कुशल व्यवस्थापक थे। उन्होंने मीटिंग में बैठते ही पूछा कि "हम लोग यहाँ किस उद्देश्य से बुलाए गए हैं?" जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने कहा कि "आप सबने हमें रामानंदाचार्य बनाया। धन्यवाद। पर कुम्भ में रामानंदाचार्य पद के विरुद्ध जो षडयंत्र रचा गया उसमें आप सभी ने मुझे अकेला क्यों छोड़ दिया? कुम्भ में मेरा साथ क्यों नहीं दे सके? आप सबने जो आश्वासन दृढ़ता से प्रदान किया था वह कहाँ गया?" हरिदास ने कहा कि "हमारा तो नागाओं ने अपमान किया।" तत्काल जगुरारामनरेशाचार्य ने कहा कि "हाँ मेरे ही कहने पर ऐसा हुआ।" बलरामदास ने कहा "यह बात आप ने कहा था।" जगुरा ने कहा "हाँ मैंने ही कहा था" कि दाढ़ी बाल नोच लो– मारना मत। त्रिवेणी के श्री नारायणदास ने कहा कि "यह बात आप के मुँह से शोभा नहीं देती।" जगुरा ने कहा कि "मुँह के बिगाड़ने में आप सब का योगदान सर्वाधिक है।" हरीदास जाने लगे। उन्हें रोक दिया गया। इस्तीफा दिया। स्वीकार हो गया। धर्माचार्य के चयन पर वहाँ भी लोगों ने कुछ नहीं कहा। इस मीटिंग में पूर्व के प्रस्तावों की पुष्टि हुई और जो सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष इस बैठक का था वह जगुरारामनरेशाचार्य के प्रौढ़तम व्यक्तित्व का उभरना था।

जगद्गुरुरामानंदाचार्य बनने पर प्रथम बार पटियाला और सामाना (पंजाब) में महीनों तक धार्मिक प्रवचन हुए। गुरुदीक्षा हुई, और धर्म का एक मनोहरी वातावरण बना। संतरामविनयदास अपनी साधुता से ही महराजश्री की कृपा के पात्र १९८९ ई. से ही बने हैं। पटियाला में कई एक परिवार महाराजश्री से जुड़े थे। वहाँ इन्हें देखकर फूले नहीं समाए। देशराज गुप्ता, रतनलाल सिंगला का परिवार धर्म कर्म में तन मन धन से जुटा था। प्रवचन-सत्संग सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया। दैनिक प्रवृत्तियों में, गुरुपूजन, महादेव की आराधना, श्रीराम का पूजन, पाठ, ईश्वर पूजन, स्वाध्याय आदि विधिवत् प्रतिदिन सम्पन्न होता रहा। वहीं परिसर में, रामजी महादेव, हनुमान, राधाकृष्ण लक्ष्मीनारायण इत्यादि के विग्रहों का प्रतिदिन पूजन होता रहा। भण्डारा भी सम्पन्न हुआ। प्रवचन के बाद प्रतिदिन भक्तों की शंका का समाधान, पधरावणी इत्यादि का समायोजन, सत्संग के महत्त्वपूर्ण पक्ष थे। पंजाब की यात्रा में अनेक सिख बंधु महाराज श्री से प्रभावित हो उनके भक्त बन गए। कई महिलाएँ तो गुरुनानक को लव–श्रीरामपुत्र से जोड़ते हुए अपने को रामभक्त कहने लगीं। पंजाब यात्रा में ही कई बार के विधायक जाति से हरिजन महाराजश्री के प्रबल प्रशंसक बन गए। वैसी पधरावणी तो आज तक नहीं हो पायी। वह राजनीतिक क्षेत्र में रहते

हुए एम.पी. तो थे ही बहुत बड़े रामभक्त थे। यह पंजाब यात्रा की उपलब्धि कही जाएगी। वहाँ का प्रवचन तो ऐतिहासिक हो गया। मुखिया मुख सों चाहिए– जैसे मुखिया मुख के अतिरिक्त अन्य अंगों को समान महत्त्व देता है उसी तरह राजनीति में भी सभी वर्गों का ख्याल रखना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास की चौपाई इसप्रकार स्वामी जी ने कही–

मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान को एक।
पालइ पोसइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।

प्रवचन देते समय वहाँ एक विचित्र घटना घटी पटियाला नगर में कभी बंदर दिखते ही नहीं हैं। उस दिन अचानक एक बाल-बंदर सुंदर काया में आया। पहली बार जगुरा के बगल में बैठ कर प्रवचन सुना। पुनः कुछ दूरी पर उनके सामने बैठ कर प्रवचन सुना। यह देख लोगों को आश्चर्य हुआ। पुनः वह चला गया। महाराजश्री की विदाई के समय वह पुनः हाजिर हो गया। सभी एक स्वर से उसे हनुमान का प्रतिरूप कहने लगे। इस प्रकार पटियाला (पंजाब) का यह प्रथम सत्संग श्रीमठ, रामानंदाचार्य, रामानंद सम्प्रदाय के लिए अविस्मरणीय क्षण बन गया।

कतिपय अपरिहार्य कारणों से १९८९ में चातुर्मास महोत्सव नहीं हो सका, फिर भी २१ दिन पटियाला और प्रायः एक माह (तीस दिन) तक सामाना में उसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ सम्पादित होती रहीं। सामाना मण्डी महराज श्री की पूर्व परिचित भक्त-भूमि है। सामाना की, रामानन्दाचार्य बनने के उपरांत दूसरी बार और वैसे यह तीसरी यात्रा की। भक्त-भगवान एक दूसरे से पूर्ण व पूर्व परिचित थे। धर्म का स्वाद तो यहाँ पहले ही लगा था। इस यात्रा में वह और अधिक स्वादिष्ट बन गया था, एकनिष्ठ हो गया था।

अग्रवाल धर्मशाला (सामान्त) में हाराज श्री अपनी संत-साधु मंडली के साथ विराजमान थे। माह पर्यन्त धर्म, अध्यात्म, सत्संग और मानव प्रेम व सेवा से यहाँ के लोग भावविभोर थे। इस यात्रा में ध्यान, अंगन्यास, चरन्यास, मंत्र, स्तुति का खूब प्रयोग हुआ। इस यात्रा की सम्प्रदाय की दृष्टि से सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि इसमें अधिष्ठात्री देवी श्रीसीता और परमाचार्य श्रीराम की चरण पादुका के पूजन का क्रम प्रारंभ हुआ। इसमें सीता जी के २४ और श्रीराम के २४ चरण चिह्नों का प्रचार-प्रसार भी हुआ। श्रीराम के दायें वाला चिह्न श्रीसीता के बायीं तरफ और इसके विपरीत श्रीराम का क्रम चला। यह सोच जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की थी। यह अभिनव प्रयोग था। साम्प्रदायिक विधि-विधान की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था। प्रायः

रामानंद सम्प्रदाय में स्वामी रामानंदाचार्य की चरण पादुका का ही पूजन होता है पर यहाँ तो परमाचार्य और अधिष्ठात्री श्रीसीता की ही आराधना प्रारंभ हो गयी। यह श्रेय भक्ति भूमि 'सामाना' मंडी को ही जाता है। अत: कहा जा सकता है कि यहाँ मात्र सत्संग ही नहीं धर्म का पूर्ण अभ्यास भी महीनो तक होता रहा। शास्त्रों में यह वाणी बड़ी दृढ़ता से कही गयी है कि आचार्य वही है जो शास्त्र वचन को केवल कहकर सुनाए ही नहीं करके दिखाए भी। सामाना मंडी में महाराजाश्री ने एक मर्यादित आचार्यत्व को भक्तों के बीच रखा जिसका प्रभाव अवर्णनीय है। इतना ही नहीं यहाँ भगवदाराधन-शालिग्राम के रूप में जो सभी वैष्णव पंथ में पूज्य होता है, हुआ। गुरुपूजन, प्रवचन, सायंकाल सत्संग सभी त्यौहारों का विधिवत् सम्पादन इसके अन्तर्गत सम्पन्न होता रहा। इस सत्संग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सभी वर्ग और सभी स्तर के भक्त इसके सहभागी बने। शंका समाधान को सत्संग के माध्यम से सरल बनाने का उपक्रम भी चलता रहा। सामाना की सबसे बड़ी उपलब्धि थी संस्कारवान नागरिकों का एक समूह खड़ा करना। यहाँ दक्षिणा से जो कुछ भी मिलता था वह श्लोक कंठस्थ कर सुनाने वाले विद्यार्थियों में बाँट दिया जाता था।

इन धार्मिक कार्यक्रमों से अनेक अपरिचित लोग भी श्रीमठ, श्रीरामानंदाचार्य, श्रीरामनरेशाचार्य, काशी, हनुमान जी से और जुड़ते चले गए। ऐसे भक्त पर्याप्त रूप से श्रीमठ की सेवा का सम्पादन भी किए।

वहाँ से काशी मुख्यालय प्रत्यावर्त्तन पर वही जप-तप, अध्ययन, अध्यवसाय चलता रहा। संतों-महंतों की सेवा का श्रीमठ ने उस वर्ष एक कीर्तिमान ही स्थापित कर दिया। साथ ही अनेक सामाजिक धार्मिक मुद्दों पर चर्चाएँ होती रहीं।

जगदगुरु रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य जी महाराज पूर्ण धार्मिक रीति नीति से जप तप करते हुए धर्मप्रेमी भक्तों और आर्त्तजनों को निरंतर अपने सदुपदेशों से अभिसिंचित कर रहे हैं। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने रामानंदाचार्य के २५ वर्षीय जीवन में प्राय: पच्चीस चातुर्मास व्रतों के माध्यम से धर्म के व्यावहारिक स्वरूप का एक बड़ा प्रासाद खड़ा कर दिया है।

चातुर्मास व्रत वस्तुत: किसी भी सम्प्रदायगत साधु के जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सनातन धर्म का मूल वेद है। वह अनादि है अत: सनातन धर्म में किए जाने वाले धार्मिक कृत्य भी अनादि हैं। वेद, सनातन धर्म, संस्कार सभी अनादि हैं। संसार का सम्बर्द्धन, सुव्यवस्था सब अनादि हैं। वेद की

ऋचाओं में अनादित्व का ही आख्यान है। गीता में एक स्थल पर कहा गया है कि वेद संसार रूपी वृक्ष के पत्ते हैं– विकास की प्रक्रिया में सहयोगी हैं। भारतीय अवधारणा में श्रीराम का विवाह सनातन परम्परा के उसी अनादित्व का दृष्टान्त है। 'रामोविग्रहवान धर्मः' की उक्ति भी इसी का प्रमाण है। इस प्रकार वेद, वेद प्रवर्त्तित सनातन धर्म, अनादि हैं सनातन हैं। साधुओं द्वारा किए जाने वाले चातुर्मास भी उसी अनादि परम्परा का एक सोपान है उसी का अंशभूत है। उस सनातन परम्परा के प्राणभूत कारक संतों को मेघ की तरह बताया गया है। मेघों की तरह संत भी घूम-घूमकर बरसते हैं– लोक कल्याण का मंगल विधान करते हैं। वर्षा काल, स्वयं में ऊर्जा उत्पन्न करना और उससे लोककल्याण की धारा बहाने की ऋतु है। यह साधु के लिए उपासना का सर्वाधिक उपयुक्त काल है। वैदिक मान्यतानुसार भगवान् विष्णु आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक शयन की अवस्था में रहते हैं। कार्तिक शुक्ल एकादशी को उनका जागरण होता है। उस काल में भक्त, साधु, आचार्य, चातुर्मास व्रत द्वारा अपने आराध्य को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। चातुर्मास की यही विष्णु आराधना भक्त जनों एवं स्वयं संतों के जीवन को धन्य कर देती है। कुछेक दिनों के धार्मिक कृत्य जनसंसार पर उतना प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाते जो चातुर्मास की प्रवृत्तियाँ कर देती हैं। निरंतर श्रवण, मनन, चिंतन और अनुसरण से मनुष्य का मानस बदल जाता है। अतः चातुर्मास के लम्बे कालखण्ड में धर्म, सत्संग, अध्यात्म, प्रवचन, सेवा एवं साधना की ऐसी परतें चढ़ जाती हैं कि जीवन धन्यता की ओर उन्मुख हो जाता है।

चातुर्मास के कालखण्ड में ही संत जन तप द्वारा एक ऐसे अलौकिक प्रकाश की ऊर्जा एकत्र करते हैं जिससे उनके आस-पास के भक्तों का संसार जगमग हो उठता है। स्वयं के मंगलार्थ एवं लोक कल्याण के लिए किया गया यह व्रत भारतीय सनातन धर्म का प्राणभूत तत्त्व है। चातुर्मास का यह कालखण्ड अनेक सनातन पर्वों, त्यौहारों, व्रतों से परिपूर्ण होता है अतः इसका माहात्म्य स्वयं बढ़ जाता है। गुरुपूर्णिमा से प्रारंभ होने वाला चातुर्मास व्रत वेदों के सम्पादन तथा अष्टादश पुराणों के रचयिता महर्षि वेद व्यास के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता है। सनातन धर्म में वर्तमान गुरुओं को वेदव्यास का प्रतिनिधि मानकर पूजन किया जाता है, उसी का अनुगमन भक्त जन भी अपने-अपने सम्प्रदायों के अन्तर्गत करते हैं। लोक संग्रह की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है– गुरु पूर्णिमा जहाँ से चातुर्मास प्रारंभ होता है। चातुर्मास की तमाम प्रवृत्तियों में कर्म संपादन द्वारा ही मन

शुद्ध होता है। शास्त्रों में कहा गया है कि कर्म प्रक्रिया अनुचित होने से कर्म की सिद्धि नहीं मिलती। जनकादि राजाओं ने कर्म द्वारा ही संसिद्धि की प्राप्ति की थी। भगवान श्रीराम बालि का बधकर सुग्रीव को राजा बनाते हैं और पुनः गृहस्थ धर्म में आने के कारण चातुर्मास व्रत का अधिष्ठान भी करते हैं। वैदिक साहित्य में चातुर्मास व्रत का विधान सन्निहित है।

चातुर्मास व्रत में निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन्हें जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य विधिवत संपादित करते हैं–

१. सिंहासन पर चतुर्भुज विष्णु का स्थापन व आराधन २. देव मंदिर मार्जन– सफाई आदि ३. रंगोलीकरण ४. भगवान् विष्णु पर तुलसी और कमल पुष्प चढ़ाना ५. गूगुल का धूप अर्पित करना। ६. पीपल की प्रदक्षिणा एवं सेवार्चन ७. विष्णु पादोदक का नित्य सेवन ८. गायत्री मंत्र का जाप ९. पुराण एवं अन्य धर्मशास्त्रों की चर्चा १०. नाममंत्र का जाप ११. सूर्यनारायण को अर्घ्य १२. व्याहृति एवं गायत्री से तीन होम १३. अन्न होम का सम्पादन प्रतिदिन १४. तुलसी माला धारण करना १५. आराध्य देव का नाम संकीर्त्तन १६. घंटादान से सरस्वती को प्रसन्न करना १७. ब्राह्मण (पुजारी) का चरणोदक पान १८. कापिला गौ का स्पर्श, श्रृंगार व पूजन करना १९. सूर्य एवं गणेश को नमन २०. गुड़पूरित ताम्रपत्र, वस्त्र एवं गोपी चंदन दान २१. सवस्त्र ताम्रपत्र, शर्करा व हेम का संयुक्त दान २२. नित्य शाक, फल और फलदान २३. मोती, ताम्बूल, हल्दी, पुष्प, दही, चूड़ा, गौ व भूमि का दान २४. केला या पलाशपत्र पर भोजन २५. शृंगार का पूर्णतः निषेध २६. एक समय ही भोजन करना २७. पत्तीदार सब्जी का त्याग २८. पंचगव्य का पान करना

विधिवत चातुर्मास का सम्पादन वैष्णवों के एक सौ साधुओं में मात्र एक साधु ही करता है। अन्य सम्प्रदायों में ५% तक सम्पन्न होता है।

चातुर्मास का सनातन व्रत साधु के जीवन में उत्कर्ष प्रदान करने वाला तथा भक्तजन को संतोष देने वाला होता है। इस प्रकार के २५ अनुष्ठान वर्तमान जगद्गुरुरा. श्रीरामनरेशाचार्य जी सम्पन्न कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त– चातुर्मास में अन्यानेक कार्यक्रम भी ज.गु.रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य द्वारा सम्पादित होते रहे हैं। अपने परम आराध्य परमाचार्य श्रीरामजी की विशेष आराधना होती है। अभिषेक, पूजन, श्रीराम सहस्त्रार्चन का पाठ होता है। यह कार्यक्रम प्रतिदिन सम्पन्न होता है। प्रति सोमवार को सावन में

रुद्राभिषेक गरिमा और समृद्धि के साथ सम्पन्न किया जाता है। तुलसी जयंती पर द्वादश ग्रंथों का पाठ, लेखन प्रतियोगिता, तुलसीदास के रूप में तुलसी साहित्य के विशेषज्ञ एक विद्वान का सम्मान, अभिनंदनादि का कार्यक्रम सम्पन्न होता है। रामलीला करने वालों का सम्मान अलग से किया जाता है। **झूलन महोत्सव** के अन्तर्गत् भगवान् श्रीराम झूला झूलते हैं। चरित्रों के अनुकरण व लीला गान करने से भगवत-भाव बढ़ते हैं। झूलन के विशिष्ट गायन होते हैं। तदुपरांत रामकृष्ण में अभेद की दृष्टि से रामनवमी के समान ही जन्माष्टमी महोत्सव एवं नंद महोत्सव सम्पन्न होता है। जबकि कृष्ण भक्ति में राम महोत्सव नहीं मनाया जाता। रामावत सम्प्रदाय की यही उदारता उसे महान् बनाती है। रामावत सम्प्रदाय में शिव, कृष्ण आदि क़ी मूर्तियाँ पूज्य होती हैं जब कि कृष्ण भक्ति में नहीं होती। स्वामी रामानंद की उदारता की यह दृष्टि अन्यत्र नहीं है। **श्रावणी पर्व सावन पूर्णिमा** को मनाया जाता। यज्ञोपवीत होता है। गणेश उत्सव पूर्ण विधि विधान से सम्पन्न होता है। महाराष्ट्र की तरह प्रतिदिन यहाँ पूजन होता है। चातुर्मास में क्षेत्रीय रामभावाभिषक्त लोगों का अभिनंदन (किसान, शिक्षक, महिला, हरिजन, समाजसेवी, व्यवसायी) और क्षेत्रीय प्रमुख देवों का पूजन सम्पन्न होता है। इसी क्रम में विद्वानों की राष्ट्रीय संगोष्ठी धर्माचार्यों, पत्रकारों की राष्ट्रीय संगोष्ठी और दलित बस्तियों में स्पर्श यात्राएँ भी सम्पन्न होती हैं। स्वाध्याय-पठन-पाठन का क्रम तो प्रत्येक चातुर्मास में सम्पन्न होता ही है, किसी विशिष्ट ग्रंथ को केन्द्रित कर प्राचीन गुरुकुल शैली में अध्यापन भी होता है। प्रवचन का क्रम निरंतर चलता रहता है। प्रथमत: रामानंदी संत एवं साधुओं अंतत: जगुरा श्री रामनरेशाचार्य जी द्वारा। पाँच यज्ञों का विधान जिसे देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, तर्पणयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ कहते हैं चातुर्मास में भक्ति भावना को प्रवर्द्धित करते हैं। भगवान् को छप्पन भोग से तर्पण की भावना में वृद्धि होती है, खाद्य वस्तुओं का समर्पण कर भक्त भावात्मक रूप से अपने को आराध्य के सन्निकट अनुभव करता है। बच्चों के लिए संस्कार शिविर, गोवंश संरक्षण के लिए नित्य चर्चा व गोशालाओं में दान की प्रक्रिया भी सम्पन्न होती रहती है। मेधावी छात्रों को उनकी प्रतिभा के विकास के लिए पुरस्कार और संस्कारशाला की व्यवस्था भी की जाती है। भक्तों के ठहरने और भण्डारे की नि:शुल्क व्यवस्था सभी चातुर्मासों में विधिवत की जाती है।

जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का पहला चातुर्मास आदि पीठ के प्रांगण श्रीमठ में ही सम्पन्न हुआ। यह काशी का केन्द्रीय स्थल है और रामानंद सम्प्रदाय का

मुख्यालय है। १९८९ में चातुर्मास का क्रम खंडित हो गया पर १९९० में जबलपुर स्थित जिलेहरी घाट में सम्पन्न हुआ। यह आश्रम नर्मदा के तट पर अवस्थित प्राकृतिक छटा से रमणीय और शुद्ध वातावरण से परिपूर्ण है। पूर्व में यह संन्यासियों का आश्रम था। जूनागढ़ अखाड़े की परम्परा में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है– पर संस्थापक स्वामी प्रेमानंद की अहैतुकी कृपा, जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य पर सदैव बरसती रही है। उनके शिष्य स्वामी महेन्द्रानंद पुरी थे। वह स्वामी रामनरेशाचार्य के विद्या शिष्य दशनाम अखाड़े हरिद्वार में रह चुके हैं। प्रेमानंद जी संन्यासी होते हुए भी परम रामभक्त थे। उनके ही आग्रह पर यहाँ चातुर्मास प्रारम्भ हुआ; लेकिन तब तक वह ब्रह्मलीन हो चुके थे। ब्रह्मलीन होने से पूर्व ही जबलपुर के इस परम तीर्थ की कुंजी महेन्द्रानंदपुरी ने जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य को सौंप दिया। अतः चातुर्मास में रामभाव का प्रसार तो हुआ ही श्रीमठ काशी का विस्तार भी एक भव्य एवं दिव्य आश्रम के रूप में हुआ। यद्यपि जबलपुर में लगभग एक सौ रामानंदी आश्रम पहले से ही विद्यमान थे; पर किसी में भी किसी भी प्रकार की धार्मिक चेतना का अभाव था। इस महोत्सव के माध्यम से, जगुरारामनरेशाचार्य, श्रीमठ काशी और रामानंद सम्प्रदाय की एक बड़ी पहचान निर्मित हुई। प्रारम्भ में जगुरा को यहाँ के लोग शंकराचार्य कहते थे– कालांतर में रामावत सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार होने के कारण भक्त एवं आमजन रामानंदाचार्य पद की महत्ता भी समझने लगे।

समापन के अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन हुआ। सीमोल्लंघन के लिए शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद निर्मित झोटेश्वर महादेव मंदिर में जाना हुआ। वहीं दस दिनों तक प्रवचन स्वाध्याय व संस्कार के कार्यक्रम चलते रहे। प्रमुख हिन्दी एकांकीकार सेठ गोविन्ददास का परिवार जबलपुर में रहता है। उनके आग्रह पर पाटबाबा हनुमान मंदिर में प्रवचन, दर्शन हुआ। साथ ही जबलपुर गन फैक्ट्री के लोकाराध्य हनुमान मंदिर में कार्यक्रम इसी चातुर्मास के दौरान सम्पन्न हुआ। अन्य क्षेत्रीय देवों का पूजन क्रम भी विधिवत चला। नगर का लोकस्वर यही था कि ऐसा कार्यक्रम बहुत वर्षों बाद देखने-सुनने को मिला।

सूरतः १९९२ का चातुर्मास औद्योगिक व धार्मिक नगरी सूरत में सम्पन्न हुआ। यहाँ रामावत सम्प्रदाय के सैकड़ों आश्रम पहले से ही विद्यमान हैं। आज भी ५०-६० आश्रम वैष्णवता का प्रचार-प्रसार करते हैं। श्रीमठ ट्रस्ट कमेटी के सदस्य म. श्री विष्णुदास का यह आश्रम कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है। म. श्री

विष्णुदास और लम्बे हनुमान के श्रीम. जगन्नाथ बापू से जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने चातुर्मास यहीं हो ऐसी इच्छा व्यक्त की थी। दोनों की सहमति और सौजन्य से यह महोत्सव यहाँ सम्पन्न भी हुआ। लम्बे हनुमान के बापू ने तन-मन-धन से सेवा की तो विष्णुदास ने कोई भी मदद नहीं किया। बापू, आश्रम में निर्माण कार्य होने के कारण आर्थिक रूप से बहुत पुष्ट नहीं थे फिर भी उन्होंने भरपूर आर्थिक सहायता की जो अविस्मरणीय है। सम्पूर्ण कार्यक्रम पंचवटी आश्रम में सम्पन्न हुआ।

इस चातुर्मास में प्रमुख धार्मिक अनुष्ठान क्या हो? इस पर काशी के विद्वानों की एक सभा महाराज श्री द्वारा बुलायी गई। विश्वनाथ शास्त्री दातार परमश्रेष्ठ विद्वान थे। उन्होंने व्यवस्था दी कि यहाँ अभिषेकात्मक हरिहर याग हो जिसमें विष्णु व महादेव दोनों की आराधना की जाय। इसके अनुरूप काशी के सात विद्वानों द्वारा श्रावण मास पर्यन्त वेद ध्वनि गूँजती रही। इस कार्यक्रम का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि कभी ध्वनि न सुनाई पड़ने पर जनता पंचवटी आश्रम की ओर दौड़ पड़ती थी– कि क्या हो गया? क्यों बंद है वेदध्वनि? उस समय जगुरा का यह अपरिचित नगर था। फिर भी कार्यक्रम की पूर्णता अपनी पराकाष्ठा पर थी। दोनो देवताओं का याग वहाँ के जनमानस में महत्त्वपूर्ण छाप छोड़ गया। वैदिक विद्वानों को उस समय छह-छह हजार की दक्षिणा प्रदान कर बिदा किया गया। इस कार्यक्रम से रामानंदी सम्प्रदाय, रामानंदाचार्य और मूलपीठ श्रीमठ की प्रसिद्धि बढ़ गई। अंत में व्यापक पधरावणी हुई। रामभाव जगा। चातुर्मास पूर्ण सफल हुआ। वहाँ के अवधूत जी प्रसिद्ध संत थे। उन्होंने मर्यादा के साथ महाराज श्री को आमंत्रित नहीं किया। अतः आग्रह पर भी जगुरा वहाँ नहीं ही गए।

इंदौर १९९३ ई. इंदौर के गीता भवन मनोरमागंज में १९९३ ई. का चातुर्मास हुआ। इसके पूर्व जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य १९९२ ई. में वहाँ जा चुके थे। गीता भवन से सम्बन्ध जोड़ने में वैष्णवशिरोमणि श्यामाशरण महाराज की महती भूमिका थी। गीता जयंती पर मैनेजिंग ट्रस्टी श्री एन. एम. व्यास ने महाराजश्री को आमंत्रित किया। उसी यात्रा में सद्भाव का निर्माण हुआ और चातुर्मास की आधार भूमि भी बनी। फलौदी के एक बड़े व्यवसायी जबलपुर में लकड़ी के बड़े कारोबारी थे। नाम था राधेश्याम रंगा। इन्होंने ही एन.एम. व्यास को चातुर्मास के लिए प्रेरित किया। वे सहर्ष तैयार हुए। यद्यपि तैयारी सम्पूर्णता से रहित थी। सदस्य भी वहाँ नियमित नहीं आते थे। फिर भी जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य द्वारा सम्पन्न चातुर्मास एक भव्य रूप पकड़ चुका था। भण्डारे के प्रस्ताव पर एन. एम.

व्यास सहमत नहीं थे। बाद में महराजश्री के प्रभाव से उन्होंने यह व्यय भी सहर्ष उठा लिया। भण्डारा विधिवत् हुआ। मुक्तकण्ठ से प्रशंसा हुई। गत ६० वर्षों में ऐसे किसी कार्यक्रम की छवि यहाँ नहीं उभर सकी। इस चातुर्मास से गीता भवन का सम्मान बढ़ गया। बड़े व प्रतिष्ठित लोग आने लगें। व्यापारी और दानदाताओं की भी संख्या बढ़ी। स्मारिका का प्रकाशन हुआ। अंततः काशी के प्रमुख विद्वान पुरोहितों द्वारा पाठात्मक यज्ञ की एक अलग ही भव्य छबि उभरी।

जोधपुर चातुर्मास १९९४ ई. : यह जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का ५वाँ व्रत था– चातुर्मास का। जोधपुर रेलवे स्टेशन के निकट 'पुष्प भवन' तथा सरदारपुरा स्थित राममंदिर में यहाँ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। यह रामानंदियों की एक शाखा रामसनेही सम्प्रदाय का केन्द्र है। पर उनकी कोई सहायता नहीं मिली। यहाँ पुष्करणा ब्राह्मणों की धर्मनिष्ठा विख्यात है। बाद में उनके सहयोग से यहाँ का चातुर्मास संचालित होता रहा पर अधिकांश व्यय श्रीमठ काशी के सौजन्य से ही हुआ। मुख्य कार्यक्रम रामलीला मैदान में सम्पन्न हुए। मथुरा से आई रासलीला मंडली ने रामलीला का मंचन किया। अंतिम १५ दिन तो रामलीला मैदान में ही कार्यक्रम हुए। सेनाचार्य स्वामी अचलानंद जी का सहयोग सराहनीय था। एक बड़े संत रामानंदी थे महंत अभयरामदास। वे सहायता व सहभागिता की बात कहकर भी कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं हुए। वर्तमान म. श्रीरामरतन दास जी उस समय बालक थे जो आज भी श्रीमठ के कार्यक्रमों में तन-मन-धन से लगे रहते हैं। यहाँ का एक ब्राह्मण परिवार जो माइनिंग में अभियंता थे उनका पूरा योगदान चातुर्मास को प्राप्त था। उनकी पत्नी श्रीमती कमला व्यास तो कार्यक्रम की रीढ़ ही बनगई थीं। उनके रामभाव प्रसार की तुलना अन्य किसी ने नहीं की जा सकती है।

यहाँ भक्तों की संख्या नगण्य थी। सम्प्रदाय के लोगों ने सहयोग नहीं किया। फिर भी गरिमा की बृद्धि और वातावरण को बदलने में यहाँ के चातुर्मास की चर्चा आज भी की जाती है। अन्य चातुर्मासिक प्रवृत्तियाँ यहाँ भी सम्पन्न होती रहीं।

लुधियाना पंजाब : १९९५ ई. यह पंजाब का औद्योगिक दृष्टि से बड़ा केन्द्र है। यहाँ की धार्मिक प्रवृत्तियाँ उद्योग की अपेक्षाकृत फीकी नहीं हैं। बड़े आश्रम, पूजा घर, संत सम्प्रदायों के ठौर-ठिकाने सब कुछ हैं, पर धार्मिक भाव का अभाव खटकता है। यहाँ के चातुर्मास के सूत्रधार श्री म. रामनारायणदास थे। यहाँ सीताराम आश्रम तथा एक अन्य रामानंदी आश्रम समृद्ध हैं। श्रीमहांत निर्मला देवी हैं। उनका पूर्ण सहयोग महोत्सव में आद्यन्त बना रहा। श्री म.

रामनारायणदास की प्रेरणा पर यहाँ कार्यक्रम करने का निश्चय हुआ पर स्थानीय भक्तों व महंतों में आपसी ताल-मेल न होने के कारण विघ्न उपस्थित होता रहा। लुधियाना नगर के मध्य दरेसी ग्राउण्ड बहुत बड़े क्षेत्रफल में फैला है। यहाँ न व्यवस्था न प्रभाव ही। अतः यहाँ का महोत्सव उत्कर्षता को नहीं प्राप्त कर सका। पारस्परिक द्वन्द्व से चातुर्मास व्रत प्रभावित हुआ। पर दो मास तक चलने वाले इस धार्मिक अनुष्ठान से क्षेत्रीय लोग पर्याप्त प्रभावित हुए। एक मन एक भाव न बनते हुए भी समापन के अनंतर १५० लोग एक साथ वैष्णव देवी का दर्शन करने जम्मू-कश्मीर गए। अन्य दैनिक प्रवृत्तियाँ यथावत सम्पन्न हुईं।

नासिक महाराष्ट्र– १९९६ ई. : यहाँ चतुःसम्प्रदाय के अखाड़ा वाले धर्मशाला में ठहराव हुआ। वहीं संतों श्रीमहंतों एवं जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का प्रवचन निरंतर चलता रहा। यद्यपि भण्डारा और प्रवचन स्थल पृथक्-पृथक् थे फिर भी अपार जनसमूह से भण्डारा और प्रवचन दोनों भरा रहता था। यहाँ के प्रमुख व्यवसायी रमेश इंदानी ने आने का आग्रह किया था; पर बाद में वे मुकर गए। महाराज श्री ने संकल्प के साथ कहा कि अब तो चातुर्मास यहीं होगा– अन्यथा कही नहीं। रमेश इंदानी खलनायक की भूमिका में रहे; पर कार्यक्रम अपनी उत्कर्षता पर पहुँचता रहा। इन बाधाओं व विरोधों के बीच यह कार्यक्रम चलता रहा। महोत्सव में श्रीराम नाम के सवा करोड़ जप का संकल्प हुआ। अभिषेक तुलसी दल से हुआ। अंततः यह जप डेढ़ करोड़ तक पहुँच गया।

यहाँ कालेराम मंदिर की महिमा अनंत है। इस मंदिर में भगवान राम की भव्य प्रतिमा काले पत्थरों से बनी है। गोदावरी तट पर पूरे ६० दिनों तक चलने वाला यह अनुष्ठान अद्भुत था। गोदावरी का षोडषोपचार पूजन प्रतिदिन हुआ। डेढ़ करोड़ जप और तुलसीदल से अभिषेक के लिए तुलसी दल व भक्तों दोनों की संख्या एकत्रित करना कठिन लग रहा था; पर राम जी की कृपा से सब सहजतः होता गया। गोपालदास मित्तल के दामाद बाम्बे से तुलसीदल भिजवाते रहे और भक्त, जैसे लगता था कि कोई दैवी व्यवस्था है, स्वतः जुटते गए।

महराजश्री प्रतिदिन कालेराम का दर्शन और गोदावरी का पूजन करते थे। ऐसा वातावरण २५ सम्पन्न हुए चातुर्मासों में शायद ही कहीं प्राप्त हुआ हो। राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान और पास में ही तिरुपति बाला जी के विग्रह पर मूल्यवान मालाएँ चढ़ाते हुए कार्यक्रम प्रारंभ होता था। प्रति मंगलवार सुंदरकांड का पाठ होता था। एकदिन बड़ा आयोजन हुआ। स्नेह जोशी इंदौर के संयोजन में छप्पन

भोग का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। पाटीदार धर्मशाला में महराजश्री का निवास था। काले राम मंदिर के चारो द्वारों पर भक्तों का रेला लगा रहता था। इस प्रकार वहाँ चातुर्मास का आयोजन ऐतिहासिक बन गया।

इस चातुर्मास की बड़ी उपलब्धियों में व्यवसायी श्रीप्रकाश आडवाणी द्वारा मांस-मदिरा का त्याग था। महाराज जी के सम्पर्क में आने से वह दोनों से मुक्त हो गए। वैष्णव बन गए। उनके पीछे हजारो-हजार लोग भी दीक्षा लिए। उन्होंने अपने सम्बंधी माधव वाधवानी के साथ आकर अपने जन्मदिन पर एक बड़ा भण्डारा दिया वहीं, उनकी दीक्षा हुई। उनमें अच्छे संस्कार आए और सभी लोग इस चातुर्मास की सराहना करने लगे। उनके इस हृदय परिवर्तन से नासिक में एक अच्छा वातावरण बना। उन्होंने दो भण्डारा दिया– एक सर्वजन का तो दूसरा विशिष्ट जन का। उनकी यह भावयात्रा आज भी यथावत चल रही है। श्रीमठ के पुनरुद्धार में लकड़ी निर्मित भवनों-मंदिरों में उनका योगदान अविस्मरणीय रहा। सिंधी और हिन्दी दोनों समाजों में इसका शुभसंदेश गया। अन्य दैनिक प्रवृत्तियाँ तो वहाँ सम्पादित ही हुईं। चातुर्मास के समापन पर सभी लोग प्रसिद्ध तीर्थ पंढरपुर गए।

पंढरपुर वैष्णव सम्प्रदाय का अत्यंत प्रतिष्ठित केन्द्र है। विट्ठल नाथ का विग्रह शतियों आस्था का केन्द्र से है। नासिक से ४०० कि.मी. दूरी पर स्थित इस धर्म केन्द्र में दर्शन करने की भी एक अनकही कहानी है। नासिक चातुर्मास हेतु इंदौर से चलने पर भीषण वर्षा हुई। कुछ भी नहीं दिखता था। उसी में जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का वाहन अन्य वाहनों से पृथक् हो गया। १० घंटे तक पता न चलने पर भाईजी श्रीगोपालदास मित्तल ने एक मनौती मानी कि महराज जी यदि सकुशल आ गए तो पंढरपुर दर्शन हेतु चलना है। उसी क्रम में यह यात्रा हुई। वहाँ अद्भुत दृश्य था। यहाँ महाराजश्री ने फूलों से सजे भगवान् विट्ठल नाथ का दर्शन किया। ज्ञानेश्वरी परायण का उद्घाटन किया। भक्तों के आग्रह पर एक नपातुला धार्मिक प्रवचन भी किया। थकने के बावजूद आरती में भक्तों के आग्रह पर जाना पड़ा। वहाँ एक बड़ी विद्वत् संगोष्ठी हुई। विद्वानों व ब्राह्मणों को ससम्मान वहाँ से विदा किया गया। भक्त-भगवान् के गले मिलने का कार्यक्रम वहाँ अद्भुत अपूर्व था।

विदाई के समय भारी भीड़ उमड़ पड़ी। रमेश सिंघानी भी थे। प्रवचन में महराजश्री ने उनके खलनायक स्वरूप का दर्शन सबको करा दिया। वह न भक्त ही बन सके और न एक विशिष्ट व्यवसायी ही। उनके हृदय की कुटिलता ने उन्हें कहीं का नहीं छोड़ा। इस प्रकार नासिक चातुर्मास ऐतिहासिक स्वरूप ग्रहण कर सबके हृदय को जीत लिया।

बैजनाथ धाम, झारखण्ड : १९९७ ई.

बैजनाथ धाम की गणना द्वादश शिव ज्योतिर्लिंगों में की जाती है। यह पहले बिहार प्रांत का प्रमुख तीर्थ स्थल था। वर्तमान में यह नवसृजित प्रांत झारखण्ड के अन्तर्गत अवस्थित है। इस चातुर्मास में ठहरने का स्थान नहीं था। श्रावण मास की भीड़ उसका बड़ा कारण थी। फिर भी कांग्रेस के प्रतिष्ठित नेता श्री कमलापति त्रिपाठी के पुत्र, उत्तर प्रदेश कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण नेता श्री लोकपति त्रिपाठी के आग्रह पर कृष्णानंद झा ने स्थान प्राप्त करने में बड़ी मदद की और चातुर्मास प्रारंभ हो सका। काशी के ग्यारह पंडितों द्वारा बाबा आश्रम में यह महोत्सव सम्पन्न हुआ। बैजनाथ धाम के महादेव का १२१ रुद्राभिषेक श्रावण मास पर्यन्त चला। यहाँ काँवरियों की अपार भीड़ पूरे देश से श्रावण तक एकत्रित होती रहती है अत: दैनिक जीवन की जरूरतों के सामान नहीं उपलब्ध हो पाते हैं; फिर जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की सन्निधि में सम्पन्न यहाँ का चातुर्मास अविस्मरणीय बन गया। यहाँ के विशिष्ट आयोजन में एक सौ आठ टोकरी बेलपत्र और इक्कीस कुंटल दूध से महादेव जी का अभिषेक सम्पन्न हुआ। कोलकाता से सुगंधित पुष्प मँगाकर पूरे मंदिर का शृंगार हुआ और छप्पन भोग का विशिष्ट आयोजन किया गया। महाराज श्री के आग्रह पर तत्कालीन बिहार राज्य के मुख्य न्यायाधीश डॉ. बी.एम. लाल भी वहाँ उपस्थित थे। वह जगुरामानंदाचार्य की सन्निधि प्राप्त कर कृतकृत्य हो गए। देवघर में गणेशोत्सव का आयोजन महाराष्ट्र के तर्ज पर किया गया।

बैजनाथ धाम के चातुर्मास में बहुत बड़ा पांडाल श्रीमठ काशी का लगा हुआ था जिनमें हजारों काँवरिये रात्रि में विश्राम करते थे और प्रसाद भी ग्रहण करते थे। उनके लिए महाराज श्री ने अलग से प्रसाद काउंटर खोलवा रखा था। यह भी इस आयोजन की एक विशिष्ट प्रवृत्ति थी। चातुर्मास में तन-मन-धन से श्री सुधीर मिश्र और श्री कृष्णानंद झा लगे हुए थे। यहाँ के मुख्य प्रबंधक फूलन बाबू (वेगूसराय) थे।

दो माह में वहाँ ऐसा वातावरण बन गया कि आश्रम वाले किराया तय करके भी नहीं लिए। प्रतिदिन हजारों की फूल सेवा करने वाला फूल का, मूल्य ही नहीं लिया। बल्कि अपनी ओर से और देने का उपक्रम किया। सब मिलाकर यहाँ रामभाव का प्रसार हुआ और महोत्सव ऐतिहासिक रूप ग्रहण कर लिया।

इंदौर—१९९८ ई. चातुर्मास : गिडवाना धर्मशाला

इस धर्मशाला के प्रधान ट्रस्टी श्रीगोपाल भाई मित्तल थे। श्रीविष्णुविंदल ने इस धर्मशाला का पूरा खर्च वहन कर चातुर्मास की राह आसान कर दी। वर्त्तन

मार्केट के व्यवसायी बंधुओं ने इसमें अहम भूमिका का निर्वाह किया। यहाँ श्रावण मासपर्यन्त सामूहिक रूप में एक-एक हजार बेल पत्र चढ़ाए गए और भादोमास पर्यन्त तुलसीदल। यहाँ का समस्त प्रबंधन चातुर्मास समिति ने किया। अखंड भगवन्नाम संकीर्तन ६० दिनों तक चलता रहा। हिन्दी और संस्कृत साहित्य के सुख्यात विद्वान् तंत्र विद्या की अद्भुत जानकारी रखने वाले विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में हिन्दी के विभागाध्यक्ष और कालिदास एकेडमी के अध्यक्ष पं. राममूर्ति त्रिपाठी को जगुरामानंदाचार्य पुरस्कार यहीं प्रदान किया गया। यहाँ एक स्तरीय स्मारिका का प्रकाशन भी हुआ। छप्पन भोग का आयोजन, प्रतिदिन सत्संग, प्रवचन व स्वाध्याय का क्रम यहाँ ६० दिनों तक विधिवत चला। महाराजश्री से प्रभावित हो तत्कालीन मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने वर्त्तन व्यवसायियों का टैक्स समाप्त कर दिया। यह अद्‌भुत घटना हुई।

१९९९ ई. काशी में

काशी में जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का चार बार चातुर्मास सम्पन्न हुआ। १९८८, १९९९, २००७ व २०१४ ई. में मूल आचार्य पीठ पर सभी कार्यक्रम सर्वाधिक गौरव के साथ सम्पन्न होते रहे। भगवन्नाम, अखंड संकीर्त्तन, प्रवचन, विद्वत गोष्ठी और विविध दैनिक प्रवृत्तियाँ यहाँ समयानुकूल सम्पन्न हुई। सम्पूर्ण ६० दिनों तक श्रीमठ पंचगंगा काशी में ही ये कार्यक्रम हुए। यहाँ महराजश्री भावनाओं में उत्कर्ष करने के लिए प्रतिदिन छह मंदिरों का सविधि पूजन व दर्शन करते थे। विष्णु काशी के आराध्य देव विंदुमाधव जिन्होंने महादेव को काशी में आमंत्रित किया था– का सविधि दर्शन, साथ ही ब्रह्मचारिणी, भगवान् दण्डपाणि, भगवान श्री कालभैरव, गर्भतीश्वर महादेव एवं मंगला गौरी के दर्शनोपरांत ही अन्य कार्यक्रम सम्पन्न होते थे। साठ दिनों में छह मंदिरों पर एक-एक दिन विशिष्ट पूजन व आराधना होती रही। धर्म की दृष्टि से यह बड़ी उपलब्धि थी। आचार्य पीठ में प्रतिदिन प्रवचन स्वाध्याय भण्डारा, विद्वत गोष्ठी का क्रम भी चलता रहा। सन् २००० ई. में सम्पन्न होने वाले सप्तशताब्दी महोत्सव का आधार भूमि भी इसी चातुर्मास में निर्मित किया था। सन् २००० ई. में सप्तशताब्दी के कारण जगुरा का चातुर्मास नहीं हो सका था। २००७ व २०१४ का चातुर्मास श्रीबिहारम बड़ी पियरी, वाराणसी में ही सम्पन्न हुआ। श्रीविहारम २०१४ में पचास कमरों से सुसज्जित प्रतिष्ठित आश्रम का रूप ले चुका हैं यहीं महाराज श्री की दीक्षा भी हुई थी।

जबलपुर २००१ ई. का चातुर्मास : प्रेमानंद आश्रम : यह आश्रम पहले संन्यास परम्परा से सम्बद्ध का। जूनागढ़ इसका मूल था। पर जगुरामानंदाचार्य के व्यक्तित्व पूजा भाव और धर्म की आत्यंतिक निष्ठा देखकर यह आश्रम तत्कालीन श्रीमहंत ने उन्हें ही सौंप दिया। प्राकृतिक वातावरण नर्मदा का पवित्र तट और धर्म की अनुकूल मनोवृत्ति के कारण यहाँ चातुर्मास का आयोजन श्रेष्ठतम रूप सप्तशताब्दी की धार्मिक खुमारी उतारने के लिए ही महराज श्री ने इसका चयन किया था। पर धीरे-धीरे जनसंकुल का सैलाब उमड़ता गया और यह चातुर्मास भी दिव्यता को प्राप्त हुआ। यहाँ के कार्यक्रम से रामावत सम्प्रदाय, स्वयं आश्रम की पहचान और जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की एक अद्भुत छवि बन गयी। स्वामी रामानंद की स्मृति में 'जगद्गुरु रामानंद मण्डपम्' की नींव भी महाराजश्री द्वारा रखी गई। उसी वर्ष यह योजना बन कर तैयार हो गई। आश्रम की गतिविधियाँ तो विस्तार प्राप्त करती गई। परिसर स्थित महादेव मंदिर का ११ कुंतल दूध से अभिषेक भी किया गया। पूरे कार्यक्रम का सजीव प्रसारण हुआ और व्यापक पैमाने पर महराजश्री द्वारा वृक्षारोपण का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस चातुर्मास से आश्रम की प्रसिद्धि में चार चाँद लग गया।

जयपुर : २००२ ई. : राजस्थान की राजधानी जयपुर अपने धार्मिक संस्कारों के लिए जानी जाती है। प्राय: ५०० वर्षों से महाराजाओं की केन्द्र बनी राजधानी में बहुत पहले से ही धर्म, अध्यात्म, संस्कृति और मानवीय गतिविधियाँ संचालित होती आ रही हैं। इसी क्रम में जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का यह चातुर्मास व्रत एक विशेष ऊँचाई को प्राप्त हुआ । इस आयोजन के मुख्य सूत्रधार श्री सुरेश बजाज और श्री गजानन अग्रवाल थे। खण्डाका हाउस के स्वामी ने महाराजश्री की सेवा में पूरी भवन को अर्पित कर दिया। एक लाख में दो माह के लिए यह तय किया गया, पर महराजश्री के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हुए उन्होंने एक लाख के अतिरिक्त ग्यारह हजार रु. और प्रदान किए। उनकी यह सदाशयता जयपुरवासियों के लिए एक बड़ी धार्मिक प्रेरणा बन गई।

राजस्थान में यह प्रचलित है कि त्रिवेणी धाम के श्रीम. श्रीनारायण दास के सहयोग के बिना जयपुर में कोई कार्यक्रम सफल ही नहीं हो सकता। इस मिथ को भी इस चातुर्मास ने तोड़ दिया। बिना उनके सहयोग के दिव्यता और भव्यता दोनों में चढ़-बढ़कर यह चातुर्मास सम्पन्न हुआ। म. श्रीबलराम दास का भी सहयोग नहीं था।

इस चातुर्मास में दैनिक प्रवृत्तियाँ तो सम्पादित हुईं ही आदर्श वैष्णव भण्डारे का समायोजन ६० दिनों तक चलता रहा। भव्य मंच, सहस्रार्चन, विद्वत् गोष्ठी, प्रवचन, स्वाध्याय इत्यादि तो होते ही रहे। अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिन्दी के प्रकाण्ड पंडित श्री देवर्षि कलानाथ शास्त्री को जगुरा रामानंदाचार्य पुरस्कार १,०००००.०० (एक लाख) प्रदान किया गया। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलौत महाराजश्री के साथ आए और मुख्यमंत्री निवास पर एक आदर्श भण्डारा भी दिया। महाराजश्री ने स्वयं उनके भोजनालय में प्रसाद बनाया और साथ ही अशोक गहलौत को प्रसाद कराया। धर्म और राजनीति का यह मेल अद्भुत था।

राजस्थान वासियों का कथन था कि ऐसा दृश्य तो शताब्दियों बाद जयपुर में देखने को मिला। शोभायात्रा का धार्मिक क्रम तो देखते ही बनता था। २००० महिलाएँ कलश के साथ, रथ, बाजे-गाजे का दृश्य अद्भुत था। चातुर्मास स्मारिका का प्रकाशन भी हुआ। विद्वत सम्मान के रूप में ११००/- दिया गया। महाराज श्री ने ११००००/- देकर अकाल (अवर्षण) के यज्ञ में आहुति प्रदान की। हरिशंकर भावड़ा भी उपस्थित थे। महाराज जी ने उनकी सामाजिक सेवा बड़ी प्रशंसा किया।

सन् २००३ में चातुर्मास का क्रम इसलिए नहीं बन पाया कि उस वर्ष नासिक में कुम्भ का आयोजन किया गया था।

दिल्ली-चातुर्मास २००४ ई. : देश की राजधानी दिल्ली स्थित अशोक बिहार (प्रतिष्ठित कालोनी) में इस वर्ष का चातुर्मास सम्पादित किया गया। वहाँ महाराजा अग्रसेन भवन में जगुरा अपने शिष्य-प्रशिष्य साधुसंत के साथ ठहराव किए और ९० दिनों तक चातुर्मास का क्रम चलता रहा। पुरुषोत्तम मास होने के कारण ३० दिन कार्यक्रम की अवधि बढ़ानी पड़ी। इस चातुर्मास के मुख्य सूत्रधार श्री दिवाकर मिश्र अधिवक्ता सुप्रीम कोर्ट दिल्ली थे। दिल्ली जैसे महानगर में परिचित भी अपरिचित बन जाते हैं। वहाँ कोई विशेष भक्त भी नहीं था; फिर भी गरिमा के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्री गजानन अग्रवाल, जयपुर की बुआ जी का परिवार वहाँ तन-मन-धन से जुटा था। अशोक नगर व्यवसायी वर्ग का केन्द्र है। कार्यक्रम से इतना प्रभाव उत्पन्न हो गया कि ३ लाख में २ लाख किराया ट्रस्टियों ने नहीं लिया। और भरपूर सहयोग भी किया। यहाँ न किसी से याचना की गई और न चंदा ही एकत्रित किया गया। यह अग्रवाल समाज का प्रमुख स्थल है अतः यहाँ अनेक कार्यक्रम प्रतिवर्ष होते रहते हैं। यहाँ के निवासियों ने

तुलनात्मकदृष्टि से बताया कि ऐसा कार्यक्रम अबतक नहीं हुआ। सब कुछ अद्भुत अपूर्व था। स्थानीय के अतिरिक्त बाहरी भक्तों ने भी खूब योगदान किया। प्रवचन, सत्संग स्वाध्याय, विद्वत्गोष्ठी इत्यादि कार्यक्रम अपनी पूर्णता में सम्पन्न हुए। प्राच्यविद्या के अनुरागी कश्मीर के पूर्व महाराजा डॉ. कर्ण सिंह को 'जगुरामानंदाचार्य पुरस्कार' यहीं प्रदान किया गया। लोगो ने टिप्पणी किया कि आज एक साधु राजा को पुरस्कार दे रहा है। अपने उद्बोधन में श्रीरामनरेशाचार्य ने कहा कि "यह राम जी शिव जी का सम्मान कर रहे हैं।" वैष्णव-शैव का यह सम्मिलन, समन्वय ही समर्थ भारत का निर्माण करेगा।

समापन के अवसर पर पालियादगादीपति उमाबा ने गंगोत्री की यात्रा के लिए सबको खुला निमंत्रण दिया। महराजश्री की सन्निधि में एक बड़ी यात्रा सम्पन्न हुई। धर्म का वातावरण बना। रामभाव का प्रसार हुआ। राजनीति की केन्द्रीभूत दिल्ली धर्मनीतिकी चेरी बन गई। चातुर्मास में अशोक गहलौत, जनार्दन द्विवेदी, डॉ. कर्ण सिंह डॉ. महेश चंद्र शर्मा ने भाग लिया। श्रीरामबहादुर राय और श्री परमानंद पांडेय के लेखों की खूब चर्चा हुई। सभी स्मारिका में प्रकाशित हुए। विद्वत संगोष्ठी में पं. राममूर्ति त्रिपाठी, प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, डॉ. सतीशराय, डॉ. उदयप्रताप सिंह और कई विद्वान् विदुषियाँ सम्मिलित हुईं। सब मिलाकर इस चातुर्मास के माध्यम से काशी की तपस्या, तप और रामानंद सम्प्रदाय की एक पृथक् पहचान बनी। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की छबि एक तपस्वी, विद्वान् संन्यासी के रूप में दिल्ली में छा गई।

मुम्बई, २००५ ई. : निर्मल बजाज भवन में यह चातुर्मास अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों में सम्पन्न हुआ। यह एस.बी. रोड पश्चिमी मलाड में स्थित है। यहाँ परिचित भक्तों व शिष्यों का अभाव था; पर दिनानुदिन यह कार्यक्रम भव्य होता चला गया। भारीभीड़ एकत्रित होने लगी। महराजश्री के शिष्य टाटा कम्पनी में बड़े अधिकारी श्रीकांत पाठक का परिवार इस चातुर्मास में रीढ़ की हड्डी की तरह उपयोगी रहा। आर्थिक व्यय भार प्रारम्भ में उन्होंने ही सँभाला। बाद में उमाबा के नेतृत्व में सभी आवश्यक सामग्री आने लगी और चातुर्मास की व्यवस्था स्पृहणीय हो गयी।

प्रबंधन (बाबाजी) श्री विधान जी ने सँभाली। इंदौर की श्रीमती स्नेह जोशी ने पूरी व्यवस्था दुरुस्त कर दी। राज कुमार मिश्र बिल्डर्स ने भी काफी सहयोग किया। इस चातुर्मास में गणेशोत्सव, विद्वतसंगोष्ठी, दलित बस्तियों की यात्रा,

मुस्लिम सम्मेलन और कवि सम्मेलन का सराहनीय आयोजन हुआ। अचानक आई बाढ़ की विभीषिका में महिलाओं, लड़कियों का शरणालय बन गया था पांडाल। बाढ़ के ही दिन उमाबा का जन्मदिन था। अतः व्यापक पैमाने पर भण्डारे की व्यवस्था हुई। चमत्कारिक बात थी कि पूरे मुम्बई में बिजली नहीं थी पर वहाँ बिजली घानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। फालौदी के पुष्करणा ब्राह्मणों ने हनुमान जी पुरोहित टरू के नेतृत्व में पर्याप्त सहायता की। गोपालदास मित्तल, श्रीविष्णुबिंदल तथा अन्य बाहरी भक्तों ने पर्याप्त सहयोग किया। जयंती भाई वैष्णव ने समाचार पत्रों में पूरे पेज का विज्ञापन एक ही नहीं कई-कई बार देकर चातुर्मास की गतिविधियों और धर्म भाव को पूरे महाराष्ट्र और दिल्ली में फैला दिया। बम्बई का चातुर्मास विशेषांक भी डॉ. उदयप्रताप सिंह के सम्पादन में प्रकाशित हुआ।

अहमदाबाद, चातुर्मास, (गुजरात) २००६ ई.

यहाँ शाही बाग का अग्रवाल भवन चातुर्मास की गतिविधियों का केन्द्रीभूत स्थल था। महोत्सव के सूत्रधार रामसनेही सम्प्रदाय के साथ महंत श्रीरामरतनदास जोधपुरी थे। महाराजश्री के शिष्य श्री जगदीश अग्रवाल और प्रतिष्ठित मिष्ठान व्यवसायी डी. डी. अग्रवाल के आग्रह पर यहाँ की योजना बनी थीं; पर दुखद रहा कि तीनों सूत्रधार असफल रहें। अंततः उमाबा ने व्यवस्थित रूप से चातुर्मास का संचालन आर्थिक आधार पर सम्पन्न किया। प्रत्येक चातुर्मास की गतिविधियाँ यहाँ भी सकुशल सम्पन्न हुईं।

२००७ पुनः काशी में : यह रामानंदाचार्य की मूल आचार्यपीठ है। अतः प्रातःकाल के समस्त पूजनादि के कार्यक्रम **श्रीमठ** पंचगंगा घाट पर और प्रवचन इत्यादि **'श्रीविहारम'** में सम्पन्न होता रहा। 'श्रीबिहारम्' में वर्तमान रामानंदाचार्य के गुरु का निवास था। यही उन्हें दीक्षा दी गई थी। रात्रि विश्राम जगुरा यहीं करते थे। यहाँ अमराबापू सभागार में सभी कार्यक्रम विधिवत सम्पन्न होते रहे। यहाँ की धार्मिक गतिविधियों का प्रतिदिन प्रकाशन होता रहा। विद्वानों की नगरी काशी में विद्वत संगोष्ठी स्मरणीय हो गई। पं. राममूर्ति त्रिपाठी, आचार्य युगेश्वर, प्रो. त्रिभुवन सिंह, मनुशर्मा, उदयप्रताप सिंह, अशोक कुमार सिंह, प्रभुनाथ द्विवेदी, आचार्य त्रिपाठी इत्यादि के सौजन्य से अच्छा विमर्श हुआ। इसी दौरान 'श्रीबिहारम्' का भौतिक विस्तार भी हुआ। यह चातुर्मास कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हो गया।

महाराज श्री ने अपने प्रवचन के सारभूत अंश को प्रतिदिन धर्मप्रेमी जनता को प्रदान किया। २००८ का चातुर्मास अपरिहार्य कारणों से सम्पन्न नहीं हो सका। पर उसी वर्ष गुरुपूर्णिमा का विशाल कार्यक्रम सामाना मण्डी पंजाब में हुआ।

जयपुर २००९ राजस्थान : यहाँ का कार्यक्रम भरत जी अग्रवाल व सत्यनारायण अग्रवाल के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। यहाँ के लोग कार्यक्रम सिद्ध हैं अत: सभी प्रकार की गतिविधियाँ यहाँ विधिवत् सम्पन्न हुईं। संत कुमार खण्डाका का औदार्य यहाँ देखते ही बनता था। उनके सौजन्य से सभी व्यवस्थाएँ प्रथम श्रेणी की रहीं। भण्डारे इत्यादि में पूर्ण उदारता का परिचय मिला। विद्वत गोष्ठी, छप्पन भोग, जन्माष्टमी, झूला उत्सव, गणेश उत्सव इत्यादि का सविधि कार्यक्रम हुआ। इस चातुर्मास से जयपुर और काशी में अंतर नहीं रह गया।

सूरत (गुजरात) चातुर्मास : २०१० ई.

सूरत शहर शताब्दियों से व्यापारिक केन्द्र के रूप में जाना जाता है। यह ताप्ती नदी के पावन तट पर स्थित ऐसा महानगर है जहाँ हीरे-मोती-जवाहरात के काम व्यापक पैमाने पर किये जाते हैं। शिवाजी महाराज की दृष्टि में भी सूरत ऐश्वर्य की निधि रहा है। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य का २०१० का चातुर्मास यहाँ विशेष प्रकार का वातावरण निर्मित करने में पूर्ण सफल रहा है। सूरत में प्रथम बार सत्रह वर्षों पूर्व महाराज श्री ने चातुर्मास का व्रत किया था। धार्मिक यात्राओं का क्रम तो इस लम्बी अवधि में चलता ही रहा। यहाँ के भक्तों के विशेष आग्रह पर महोत्सव भी आयोजित हुआ। उदासीन सम्प्रदाय के 'सिद्धकुटीर आश्रम' पर निरंतर ६० दिनों तक धर्म के अमृत की वर्षा होती रही। वृहद् भण्डारा, आकर्षक एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न पाण्डाल, काशी के श्रीराम का बाल विग्रह, प्रवचन, स्वाध्याय और देर रात तक महाराजश्री की अमृतवाणी यहाँ के चातुर्मास का आकर्षण रही है। यहाँ गुरुपूर्णिमा, गणेश उत्सव, नंद महोत्सव, विद्वतसंगोष्ठी, पधरावणी और अन्यान्य धार्मिक कृत्यों से ऐसा वातावरण बन गया कि गरीब से गरीब और अमीर से अमीर लोगों ने सहभोज एवं सहयोग किया। विषमताएँ मिटीं। राम भाव का प्रसार हुआ और धर्म का राज्य-रामराज्य प्रकट हो गया। महोत्सव में जगुरा युवा मंडल और महिला मंडल ने सेवा का ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया कि लोग बागबाग हो गए। पूरे चातुर्मास में एक केन्द्रीय कार्यालय बना था जो भक्तों की किसी भी प्रकार की कठिनाई दूर करने में दिनरात लगा रहता था। यह सब दृश्य देखकर बड़े बुजुर्गों ने कहा कि ऐसा समागम तो सूरत में शताब्दियों बाद हो रहा है।

सनातन धर्म में चातुर्मास की अनादि कालीन परम्परा है। बीच में शिथिलता के कारण भक्तजन, धर्मनिष्ठ जन विस्मृत ही कर गए थे कि चातुर्मास भी कोई महोत्सव होता है। महाराजश्री के कुशल नेतृत्व में पूरे ६० दिनों तक धर्म की वर्षा होने से स्थानीय भक्तों एवं निवासियों को लगा कि चातुर्मास व्रत तो अपना ही है। सनातन धर्म का है। हजारों लोगों ने रामावत सम्प्रदाय में स्वयं को दीक्षा के लिए समर्पित किया और सूरत राममय दिखने लगा। इस समय सूरत महाराजश्री के भक्तों में सबसे बड़ा मंडल बन गया है। पूरे चातुर्मास में सुव्यवस्था और सुप्रबंधन देखते ही बनता था। चातुर्मास समिति के अध्यक्ष छगन भाई, कोषाध्यक्ष भूपति भाई और संयोजक देवचंद भाई ने भगीरथ प्रयास कर रामभक्ति की गंगा को यहाँ अवतरित कर दिया। इतना ही नहीं रामानंद सम्प्रदाय की महत्त्वाकांक्षी योजना अद्वितीय श्रीराम मंदिर की सेवा का विस्तार भी इस चातुर्मास की विशिष्टता कही जाएगी। सिद्ध कुटीर के श्रीमहंत निर्मलदास का औदार्य व सद्व्यवहार ही इस चातुर्मास का संबल रहा है। जनक भाई पटेल और गोविन्द भाई पटेल की उदारता ने सनातन धर्म को उच्चासन प्रदान कर दिया। लम्बे हनुमान के श्रीमहंत ने तनमन धन से उसकी सफलता में संलग्न थे। दो दिनी विद्वत संगोष्ठी, दलित बस्तियों में जाना, रक्षाबंधन के अवसर पर राखी बंधन के बहाने स्वजनों को मान-सम्मान देना इस चातुर्मास की उपलब्धि कही जाएगी।

इंदौर (मध्य प्रदेश) २०११ का चातुर्मास : इंदौर को व्यापारिक दृष्टि से छोटी मुम्बई कहा जाता है। यहाँ महाराजश्री के सम्पन्न व आस्थावान भक्तों का एक बड़ा समूह रहता है। इसके पूर्व यहाँ १९९३, १९९८ में चातुर्मास महोत्सव सम्पन्न हो चुका था। इस वर्ष के चातुर्मास का प्रबंधन गोपालदास मित्तल ने किया। वह १९९३ के चातुर्मास में महाराजश्री के सम्पर्क में आए। आज वह भक्तों की प्रथम पंक्ति में प्रथम स्थान पर परिगणित हैं। उनका सहयोग श्रीविष्णु विंदल ने उसी प्रकार किया जैसे शरीर की रक्षा-सुरक्षा दो पाँव करते हैं। दोनों अभिन्न होकर सम्पूर्ण व्यवस्था करते रहे। श्री तुलसी मनवानी और उनकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मी मनवानी ने अत्यंत श्रद्धाभाव से पूरे चातुर्मास में सेवा की। गोपालदास मित्तल-भाईजी के विशेष आग्रह पर ही **गीता भवन इंदौर** में यह महाव्रत सम्पन्न हुआ। प्रारंभ में भाई जी गीताभवन ट्रस्ट के सामान्य सदस्य थे पर उनकी सेवाएँ निरंतर बढ़ती गईं और अब गीता भवन के ट्रस्टी बन गए। एक अस्पताल बनवाकर उन्होंने सेवा के नाम पर गीता भवन को प्रदान कर दिया। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य

के अद्भुत व्यक्तित्व से गीताभवन की प्रतिष्ठा बढ़ी, महत्त्व बढ़ा और सेवाएँ भी बढ़ीं। सभी ट्रस्टी सदस्य, पुजारी, कर्मचारी,दलित बस्ती के सेवारत जनों-परिजनों पर इस चातुर्मास का जादुई प्रभाव पड़ा।

जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य इस व्रतोत्सव में प्रतिदिन ६००/- मूल्य का माला आराध्यदेवों पर अर्पित किया करते थे। इस कार्यक्रम की पूरे इंदौर में चर्चा होने लगी। काशी के संत की महिमा इंदौर में फैल गई। उनका प्रवचन, स्वाध्याय, पूजा पद्धति और प्रभावशाली धर्मसनी वाणी से पूरा इंदौर झूम उठा। रामकथा मंदाकिनी का प्रवहन आचार्यश्री के श्रीमुख से निरंतर एक सप्ताह तक होता रहा। उसका सजीव (लाइव) प्रसारण पूरे विश्व ने देखा और सुना। इससे भी यह चातुर्मास अन्यों से विशिष्ट रहा। लाइव प्रसारण, का यह पहला चातुर्मास था इसमें दस लाख रुपये व्यय हुए। यद्यपि यहाँ के प्रबंधकों ने स्थानीय भक्तजनों से सम्पर्क नहीं साधा फिर भी पूरे देश के रामभक्तों ने इस चातुर्मास को बड़ी श्रद्धा-आस्था और भक्ति-भाव से ग्रहण किया। अन्य सभी दैनिक प्रवृत्तियाँ तो यहाँ सम्पन्न हुई ही हैं। 'गोस्वामी तुलसीदास सम्मान' से प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, निदेशक साहित्य अकादमी-भोपाल को सम्मानित किया गया। विद्वत् संगोष्ठी में संयोजक डॉ. उदयप्रताप सिंह ने देश के प्रतिष्ठित विद्वानों का परिचय दिया– इससे कार्यक्रम की उत्कर्षता बढ़ती गई। वह चातुर्मास कई संदेश एक ही साथ दे गया।

तीर्थराज प्रयाग (उत्तर प्रदेश) : चातुर्मास २०१२ ई. : सम्प्रदाय प्रवर्त्तक स्वामी रामानंद की प्राकट्यस्थली पर यह चातुर्मास ९० दिनों तक चलता रहा। एक माह पुरुषोत्तम मास का बढ़ गया था। प्रयाग यज्ञों की, संतमहंतों की, श्रीमंतों की, गंगा यमुना सरस्वती के संगम की, विद्या न्याय और कलाविदों की नगरी है। यहाँ का चातुर्मास तो स्वयं में ही महिमाशाली होता है। जगतगुरु रामानंदाचार्य की प्राकट्य स्थली पर आज एक भव्य-दिव्य मंदिर विराजमान है। परम्परया सिद्ध है कि यहीं स्वामी जी की जन्म भूमि है। राजस्थानी शैली में निर्मित यह मंदिर गंगोन्मुखी है। संगम के समीप है। विस्तृत परिसर वाला है तथा कला की दृष्टि से उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग का प्रयाग में एकलौता आदर्श मंदिर है। चातुर्मास के समय महाराजश्री ने इसे इतना सुसज्जित और अलंकृत करवा दिया था कि देखने वालों की आँखें फटी की फटी रह जाती थीं। मुहल्ले का नाम दारागंज है। मोरी गेट से इसे पहचाना जाता है। स्वामी रामानंद की प्राकट्यस्थली से प्रभावित हो समर्थ गुरु रामदास (गुरु शिवाजी महाराज) ने विशाल हनुमत विग्रह का निर्माण पास में ही कराया था।

यहाँ तुलसी सम्मान प्रो. योगेन्द्रप्रताप सिंह को दिया गया। दो दिनी संगोष्ठी सम्पन्न हुई। संयोजक डॉ. उदयप्रताप सिंह ने विद्वानों का परिचय प्रदान करते हुए कहा कि तीर्थराज प्रयाग में केवल ज्ञान की ही धारा नहीं बहती है; अपितु ज्ञान की अनेक धाराओं का संगम भी है। विद्वत् समाज उसी का जीता-जागता उदाहरण है। उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता, पूर्व न्यायाधीश, प्रशासनिक अधिकारी, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वानों से पांडाल सदैव आपूरित रहता था। महाराज श्री प्रतिदिन यहाँ संगम का पूजन करते और यथेच्छ दान भी देते। पुरोहित समुदाय महाराजश्री की उदारता देखकर उनका चरण चञ्चरीक बन गया था। सैकड़ों साड़ियाँ और कीमती वस्तु गंगा-यमुना और सरस्वती को अर्पित की जाती थीं। यह क्रम ९० दिनों तक चला। पंडा-पुरोहित समाज दान में वस्तुओं को प्राप्त कर अघा गया था।

इस चातुर्मास की बड़ी उपलब्धि थी महाराज श्री का उच्चन्यायालय के अधिवक्ताओं के बीच प्रवचन। यह कार्यक्रम महाराजश्री के परम भक्त, अधिवक्ता श्री राजेश्वर सिंह के आग्रह पर तय हुआ। बार एसोसियेसन में इस प्रकार का प्रवचन उच्च न्यायालय के इतिहास में दूसरी बार सम्पन्न हुआ। प्राय: २०० वर्षों से यहाँ न्याय प्रक्रिया अंग्रेजों द्वारा प्रारंभ की गई थी। महाराज श्री ने अपने प्रवचन में वकीलों को सम्बोधित करते हुए कहा कि– "यहाँ न्याय दिलाने की सबसे बड़ी जगह है। यहाँ न्याय दिया भी जाता है– दिलवाया भी जाता है। जीवन के विविध क्षेत्रों में न्याय व न्यायालय की पहुँच है पर बहुत क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ न न्यायालय पहुँच पाता है और न न्यायाधीश। बच्चे के साथ अन्याय करने वाली माँ का न्यायालय तो कहीं और है! उसे तो कोई और न्याय देता है। विवश हताश, निर्धन, निपढ़, सभी प्रकार की दुर्बलताओं से भरा व्यक्ति एक ऐसे न्यायाधीश की शरण में जाता है– जहाँ सब अच्छा ही अच्छा होता है। आप फाइल, नियम-कानून को आधार बनाकर न्याय देते हैं, हम उसकी पूजा कर उसे प्रसन्न करते हैं। आप अपराधी को कड़ी-से कड़ी सजा देते हैं हम अपराधी का मानस बदल देते हैं। दोनों का उद्देश्य एक ही है। रास्ते अलग-अलग हैं। आज तो लाल कपड़ा भी दागी हो गया। सफेद कपड़ा भी दागी है। हम सभी को न्याय देने की कामना करते हैं। सत्य-असत्य उस महान्यायाधीश के पास भेजते हैं जिसके पास सबकी फाइल खुली है चाहे वह न्यायाधीश हो अथवा अपराधी। न इस न्याय मंदिर का विकल्प है न उस महान्यायाधीश का।" महाराजश्री के इस प्रवचन से बार एसोसिएशन का

हाल तालियों से गूँजता रहा। प्रवचन के दौरान न कोई अधिवक्ता बाहर गया न अंदर आया। खचाखच हाल में ऐसी नीरवता थी मानो अधिवक्ता लोग किसी देवदूत का दर्शन कर रहे हों, निसिचर हीन करहुँ मही की उद्घोषणा करने वाले आराध्य श्रीराम की बाणी सुन रहे हों।

इस चातुर्मास में अन्य गतिविधियाँ भी अपने उत्कर्ष पर थीं। यह चातुर्मास महाकुंभ काल का पूर्वाभ्यास था। लग रहा था कि कुम्भ के ही कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं।

हरिद्वार कुम्भ २०१३ : हरिद्वार संतों की नगरी है। इसे कुम्भ के आयोजन का शुभावसर भी अनादि काल से संप्रात है। गंगा का प्रथम अवनीस्थल भी है। चारों धामों में एक बदरी धाम का प्रवेश द्वार भी है। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की तपोभूमि है। अध्यापन की कर्मभूमि है। उनके रामानंदाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने का २५वाँ वर्ष भी है जहाँ एक पीढ़ी की प्रवृत्तियाँ सम्पादित होती हैं। हरिद्वार महराज श्री द्वारा संकल्पित विश्व के अद्वितीय श्रीराम मंदिर की स्थली भी है– जो निरंतर वर्द्धमान है। यह सब सोच विचार कर ही हरिद्वार चातुर्मास, महोत्सव स्थल के रूप में चयनित किया गया।

हरिद्वार स्थित चातुर्मास में धर्म भाव की ऐसी प्रस्तुतियाँ संपादित हो रही हैं कि बड़े-बड़े सम्प्रदाय, अखाड़े, संत-श्रीमहंत, आश्रम, लज्जित से होते जा रहे हैं। स्वाध्याय, प्रवचन, सतसंग, दलित बस्तियों में जाना, नित्य नैमित्तिक कार्यक्रमों की शृंखला, विद्वत् संगोष्ठी, नंद महोत्सवं, गणेशोत्सव, तुलसीजयंती, तुलसीसम्मान समारोह, साधु संतों की सेवा, दीनहीन मलिन में ईश्वरत्व का प्रवचन इस चातुर्मास को धर्म की दृष्टि से अत्यंत उत्कर्षता प्रदान कर गया है। हरिद्वार में वैसे तो संन्यास परम्परा का बाहुल्य है। अनेक सम्प्रदायों के अखाड़े व आश्रम हैं, पर सनातन परम्परा में चातुर्मास व्रत का कोई रूप हरिद्वार में सम्प्रति नहीं दिखता है। हरिद्वार के सामान्य जन इस टिप्पणी से बाज नहीं आते हैं कि ऐसा धार्मिक अनुष्ठान तो यहाँ कभी दीख नहीं पड़ा। निःशुल्क भोजन, निःशुल्क आवास, निर्धनों की सहायता, उपेक्षितों को मान-सम्मान और छोटो-बड़ों का सम्मान व आदर की जो गंगा इस चातुर्मास में बही वह उस भौतिक गंगा से कम वेगवती नहीं थी। ज्ञान की धारा में देश के प्रत्येक कोने से आये विद्वानों ने ऐसी समाँ बाँधी कि मानों हरिद्वार ही सर्वस्व है, विद्या ही जीवन है, भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है और प्रेम ही धर्म का मूल है।

काशी में चौथा चातुर्मास महोत्सव २०१४ ई.

यह चातुर्मास रजतजतयंती वर्षङ के विभिन्न कार्यक्रमों से समलंकृत रहा है। वे सभी प्रवृत्तियाँ यहाँ भी संपादित हुई पर अपनी गरिमा और विशिष्टता में अन्यों से श्रेयस्कर थी। विद्वत नगरी काशी में प्रतिदिन किसी न किसी ज्वलंत समस्या पर महाराज श्री प्रवचन होता रहा। श्रीरामपूजन, रुद्राभिषेक, स्थानीय देवों का दर्शन, विविध प्रकार की संगोष्ठियाँ, महाराज श्री द्वारा स्वाध्याय (प्रतिदिन) इस महोत्सव की विशेषता रही है। गीत संगीत, विद्वत संगोष्ठी, स्वजन हरिजन व गिरिजन के जीवन में उत्थान के लिए इस महोत्सव में अनेक प्रासंगिक विचार आए। इस चातुर्मास में श्रीविहारम अपने पूर्व यौवन एवं उत्कर्षता के साथ प्रकट हुआ है। आधुनिक सुविधाएँ भी बढ़ी हैं। ज्ञातव्य है कि यह वर्तमान महाराजश्री के दीक्षा गुरु का आश्रम रहा है इसे महाराजश्री ने एक भव्य रूप प्रदान कर दिया है।

काशी में जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य द्वारा त्यौहार सम्पादित करने की अद्भुत शैली

वैसे तो त्यौहार-पर्व मनुष्य के संस्कृत व सभ्य होने के साथ ही प्रारम्भ हो गये थे। शास्त्रों, पुराणों, लोककथाओं और लोक जीवन के प्राण त्यौहार और पर्व ही होते हैं। मनुष्य एक उत्सव धर्मी प्राणी है। उसमें भी भारतीय संस्कृति की जीवंतता पर्वो-त्यौहारों को सोत्साह सम्पादित करने में ही प्रकट होती है। ये पर्व और त्यौहार हमें शास्त्र और लोक से जोड़ते हैं,प्रकृति और जीव से निकटता उत्पन्न करते हैं, मनुष्य के उत्कर्ष के साथ मानवीय सम्बन्ध को विकसित करने की आधार भूमि भी निर्मित करते हैं। ये पूरे देश में मनाये जाते हैं, पर काशी में इनकी छटा निराली है। यहाँ शास्त्र और लोक ऐसे रचे पगे हैं कि उनका पृथकत्व कठिन है। वैसे भी काशी धर्म की नगरी कही जाती है। अनादिकाल से धर्म-संस्कृति के क्षेत्र में, काशी श्रेष्ठ रही है। प्राचीनतम नगर के रूप में काशी का नाम गिना जाता है। अत: यहाँ लोक व शास्त्र जीवन की परम्पराएँ एक परिपक्व स्वरूप ग्रहण कर चुकी हैं। सभी भारतीय धार्मिक सम्प्रदाय काशी में अपनी बात कह कर निश्चिंत हो जाते हैं, पुराणों में कहा है कि अपने कर्मों का फल तो मिलता ही है उन कर्मों से उत्पन्न पापों का नाश काशी में अनुष्ठान से ही संभव है अत: सभी काल खंडों में काशी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती रही है। वैसे फल की प्राप्ति तो सर्वत्र होती है पर काशी में पंचगंगा घाट इस दृष्टि से सर्वाधिक

महत्त्वपूर्ण व पवित्र स्थल माना गया है। यहाँ के स्नान-दान-ध्यान से त्यौहार आनंदवर्द्धक, सुखवर्द्धक और आयुवर्द्धक होते हैं।

काशी में कार्तिक मास में जगह-जगह पर्व त्यौहार मनाए जाते हैं पर उनकी ध्वनि बहुत मंद, प्रभाव निस्तेज और उत्सवधर्मिता नगण्य सी हो गई थी। पच्चीस वर्ष पूर्व जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने इनमें एक तरुण क्रांति ला दी है। कार्तिक में दीप, आकाश दीप और महाराजा विभूति नारायण सिंह की प्रेरणा से पंचगंगा घाट पर देवदीपावली का एक भव्य स्वरूप दशकों से उभरता रहा है। उसमें तीव्रता उत्साह व लोक जुड़ाव का कारण बने हैं जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य। महाराजा बनारस की इच्छा थी कि गंगा और उदयकालीन सूर्य की आरती सोत्साह मने। यह कार्यक्रम चला भी; पर बहुत धीरे-धीरे उसे तीव्रता और गति देने का कार्य महाराज श्रीरामनरेशाचार्य ने किया। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि त्रिपुर नामक राक्षस के संहार की खुशी में देव दीपावली मनायी जाती है। वह दिन-यानी राक्षस के बध का दिन कार्तिक पूर्णिमा थी अतः उसी दिन से देवदीपावली की प्रथा चली। इस प्रथा को काशी में उद्दीप्त करने का भरपूर प्रयास जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने किया। इसी प्रकार अनेक लुप्तप्राय त्यौहारों को महाराज श्री ने एक नया जीवन दिया। उनका यह अभियान १९९३ ई. से चला और आज अपने शिखर पर देवदीपावली तथा दशाश्वमेध घाट पर आरती के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार आकाशदीप-पूर्वजों की स्मृति में काशी का संस्कृतिमय त्यौहार है। गोपालाष्टमी भी उसी श्रेणी में आती है। यम द्वितीया का त्यौहार भी एक विशेष कथा प्रसंग से जुड़ा है। इसी प्रकार हनुमत जयंती का त्यौहार भी एक खास किस्म की परम्परा का निर्वहन करता है। ज्ञातव्य है कि ये सभी त्यौहार महाराज श्री द्वारा व्यापक पैमाने पर सविधि सम्पन्न होते हैं।

कार्तिक मास तो त्यौहारों के पवित्रतम क्षणों में परिगणित है। आँवला नवमी पूजन, तुलसी विवाह, महादेव का रुद्राभिषेक, इत्यादि कार्तिक मास के प्रमुख पर्व व त्यौहार हैं जिन्हें आमजन प्रायः भूलते जा रहे थे उन्हें महाराजश्री ने दैनिक व्यावहारिक क्रम के रूप में जागृत कर दिया। इसी के साथ काशी के महादेवों का पूजन भी विधिवत होता है। काशी के मुख्य महादेवों का अभिषेक ढुंढिराज गणेश, साक्षीविनायक, अन्नपूर्णा-पार्वती इत्यादि का पूजन क्रम भी इसी पवित्र मास में महाराज श्री द्वारा सम्पन्न होता है। यहाँ के मुख्य देवों को इस प्रकार स्मरण किया गया है–

विश्वेशम्, माधवं, ढुंढिम, दण्डपाणिनम् ।
च भैरवम् बंदे, काशीगुहाम, गंगाम, भवानिम मणिकर्णिकाम ।।

कहा जाता है कि विष्णु काशी के मुख्य देव विंदुमाधव जी ने महादेव शिव को काशी आने का निमंत्रण दिया था। काशी में यह शैव-वैष्णव एकता का स्वरूप है। विष्णु काशी के मुख्य देव विंधुमाधव, शिवकाशी के मुख्यदेव काशी विश्वनाथ, दण्डपाणी और काल भैरव हैं। उपदेव ब्रह्मचारिणी, गभतीश्वर महादेव, मंगलागौरी का प्रतिदिन कार्तिक में पूजन महाराजश्री द्वारा होता है। बालाजी का मक्खन से पूजन होता है। यह भी पौराणिक मान्यता तथा लोक विश्वास है कि कार्तिक में पंचगंगा पर सभी तीर्थ आकर अपना पापक्षय करते हैं। प्रयाग भी आता है। काशी विश्वनाथ भी आते हैं। पंचगंगा में गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा और धूतपापा हैं। धूतपापा का यही काम है– सबका पापक्षय करना इसी मास में प्रतिदिन भक्तों के लिए महाराजश्री दीपदान भी करते हैं। कार्तिक पूर्णिमा के दिन हजारा दीप स्तम्भ पर दीप सजाए जाते हैं। इसका निर्माण महारानी अहिल्याबाई इंदौर ने किया था। सभी ८०-८५ घाटों पर देव दीपावली की परम्परा चल पड़ी है। धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से देवदीपावली काशी का अप्रतिम पर्व का रूप पकड़ता जा रहा है। महाराज श्री की प्रेरणा व सहयोग से राजघाट, दशाश्वमेध घाट और पंचगंगा घाट पर यह प्रथा प्रारंभ की गई। बनारस को अरबों रु. की आमदनी इस पर्व पर होती है। शरदपूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक विविध पर्वों, त्यौहारों को महाराजश्री ने एक नया क्रम प्रदान कर दिया। छप्पन भोग और विशिष्ट तिथियों पर विशिष्ट भण्डारों की प्रथा भी जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य की ही चलाई हुई है।

वैशाखमहोत्सव– इसे माधव मास भी कहा जाता है। इसे नर्मदा तट पर मनाया जाय तो और फलदायी होता है। महाराजश्री के आश्रम प्रेमानंद आश्रम जिलेहरी (जबलपुर) घाट पर इसका आयोजन विधिवत् किया जाता है। यहाँ अखण्ड भगवन्नाम संकीर्त्तन, नर्मदाजी का षोडषोपचार पूजन, प्रतिदिन हवन, हलवा का भोग, दरिद्रनारायण की सेवा, वस्त्र, भोजन और द्रव्यदान, सभी स्थानीय देवों का पूजन विधिवत् सम्पन्न होता है। गुरुपूजन, भगवतचर्चा, संध्या को प्रवचन, छायादान, जलदान, व्यजन दान किए जाते हैं– ये शास्त्रोक्तदान हैं। भण्डारा, ८-१० दिन तक लगातार चलता है। साड़ी दान, द्रव्यदान, भोजन, वस्त्रदान स्नान करने की विधि और वैशाख पूर्णिमा को दीप भी जलते हैं। इन सभी लुप्त उत्सवों व पर्वों को महाराजश्री ने जीवनदान दिया है।

काशी में नवरात्र का बहुआयामी आयोजन– नवरात्र के सभी दिनों में अन्न का निषेध पूरे आश्रम में रहता है। सभी व्रती रूप में संयमी जीवन जीते हैं। राममंत्र का सामूहिक पाठ होता है। सामूहिक यज्ञ सम्पन्न होता है। पवमान (ऋग्वेद) के सूक्तों से राम जी का अभिषेक किया जाता है। तीनों रामायण-वाल्मीकि, अध्यात्म और रामचरितमानस का पाठ होता है। रामकथा, और, रामजी का विविध शृंगार होता है। स्नानादि में साबुन आदि वर्जित होते हैं। बधाई गान, बाजे-गाजे के साथ दिन में महा आरती, और प्राकट्य स्वरूप पर विशेष आयोजन होते हैं। रामनवमी के दिन गीत-संगीत, कत्थक, संगोष्ठी इत्यादि का उत्सव मनाया जाता है। अंतिम दिन विविध व्यंजनों से युक्त भण्डारे का आयोजन होता है।

श्रीमठ संगीत समारोह– काशी धर्म व अध्यात्म के साथ विभिन्न कलाओं की भी महत्त्वपूर्ण नगरी है। संसार को वादक, नर्तक, और गायक प्रदान करने में काशी की समानता अन्य नगर नहीं कर सकते हैं। यहाँ शिव का ताण्डव भी होता है और लास्य भी। श्मशान के भस्म भी हैं और मंदिरों के निर्माल्य भी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गत चार वर्षों से 'श्रीमठ संगीत समारोह' का आयोजन हो रहा है। संकटमोचन में संगीत का समारोह वर्ष में दो बार होता है पर वह शहर के दक्षिणी भाग में अवस्थित है अत: मध्य शहराती वहाँ नहीं पहुँच पाते हैं। उसकी मूर्ति इस संगीत समारोह से हो जाती है। तीन वर्षों में ही यह बड़े समारोह का रूप ले चुका है। इसमें महाराजश्री की अभिरुचि का ही चमत्कार चारों ओर दिखता है।

जगु रामानंदाचार्य जयंती समारोह श्रीमठ, काशी

यह समारोह प्रतिवर्ष जगद्गुरुरामानंदाचार्य के जन्म दिन पर सोत्साह पूरे भारत में मनाया जाता है; श्रीमठ काशी जहाँ उनकी तपोभूमि है– यह एक विशेष आकर्षण के साथ सम्पादित होता है। रामभक्ति के प्रवर्त्तक स्वामी रामानंद का व्यक्तित्व बहुआयामी था। भक्ति द्वारा वह समस्त जीवों को मोक्ष का मार्ग निर्दिष्ट करते हैं। युगीन बोध का चिंतन उनका सबसे बड़ा योगदान है। उनके नाम पर सम्प्रदाय का चलना उनके व्यक्तित्व की महानता का ही द्योतक है। श्रीमठ मूलगादी है। रामभक्ति की आदिपीठ है। अत: यहाँ का समारोह प्रतिनिधिभूत समारोह है। वर्तमान जगद्गुरु श्रीरामनरेशाचार्य ने इस समारोह को एक विशिष्ट गरिमा प्रदान की है। गत पचीस वर्षों में वर्तमान आचार्य ने इसे नई ऊँचाई के साथ देशव्यापक बनाया है। धर्म की नगरी काशी में यह समारोह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

श्रीमठ पंचगंगा काशी में त्रिदिवसीय समारोह बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। यह क्रम वर्तमान पीठाधीश्वर के जगद्गुरु पीठ पर आसीन होते ही एक वर्ष बाद अखिल भारतीय रूप ले चुका था। पहले दिन स्वामीजी का चरणपादुका पूजन, विधिविधान से महराजश्री द्वारा किया जाता है। पूरे देश के सम्प्रदाय सम्बद्ध संत-साधु, वैरागी, मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर विविध उपसम्प्रदायों के तपस्वी, भक्त स्वामी जी की जयंती का आयोजन गरिमापूर्ण ढंग से करते हैं। इसी दिन विभिन्न प्रांतों से आए संतगण रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी जी को प्रणाम करते हैं, उनकी भक्ति को जीवन के सारभूत अंश में स्वीकार करते हैं। साधु भजन, नृत्य इत्यादि अभिव्यक्तियाँ करते हैं। सम्प्रदाय के साधु-संत वर्तमानाचार्य को ही स्वामीजी का प्रतिनिधि मानकर पूजते हैं, आशीष लेते हैं और अपने आश्रमों को चले जाते हैं। इसीदिन विशाल शोभायात्रा भी निकलती है। दूसरे दिन संगीत का सुमधुर कार्यक्रम सम्पन्न होता है, बधाई गान गाए जाते हैं। अंततः महराजश्री का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इसमें भक्तों, गृहस्थों का जनसंकुल उमड़ पड़ता है।

तीसरे दिन संगोष्ठी द्वारा विद्वतचर्चा का आयोजन होता है। देश के विभिन्न प्रांतों से आए विद्वान् स्वामी रामानंद की समन्वयी दृष्टि, समतामूलक समाज, छूआछूत विवर्जित दृष्टिकोण का प्रगटीकरण करते हैं। उनकी संस्कृत हिन्दी रचनाओं का आज के युगानुरूप व्याख्या करते हैं और उनके संदेश का जन-जन तक पहुँचाते है। इसी दिन अर्थपूत, चरित्रपूत किसी एक विद्वान को 'जगद्गुरु रामानंदाचार्य पुरस्कार' प्रदान किया जाता है जिसकी राशि १०००००/- (एक लाख) रुपये होती है। धर्म के क्षेत्र में यह अभी भी बड़ा पुरस्कार माना जाता है। अबतक आचार्य भगवती प्रसाद सिंह, आचार्य राममूर्ति त्रिपाटी, प्रो. वशिष्ट त्रिपाठी, आचार्य कलानाथ शास्त्री, डॉ. कर्ण सिंह, प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, कथाकार विवेकीराय (उ.प्र.) प्रो. युगेश्वर इत्यादि को प्रदान किया जा चुका है। इस प्रकार स्वामी जी की जयंती पर यह समारोह अपना एक विशेष संदेश प्रदान करने में सफल हो सका है। यह वर्तमान आचार्य के कार्यकाल की महती उपलब्धियाँ हैं।

जगद्गुरु रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य की यात्राएँ

रामानंदाचार्य पद पर अभिषिक्त होते ही उन्होंने यात्राएँ प्रारंभ कर दीं। इस प्रकार पच्चीस वर्ष से यात्रा का क्रम निरंतर जारी है। गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पंजाब, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, हरियाणा, दिल्ली, चण्डीगढ़, हिमाचल प्रदेश, बिहार की अनेक यात्राएँ जारी हैं। यात्राएँ भी दो प्रकार

की होती हैं। एक स्वयं के हित के लिए तो दूसरी लोक हित के लिए। एक में वैयक्तिक सुख-दुख की चिंता होती है तो दूसरी में लोक की, समाज की, समूह की, देश-प्रदेश की और मानव जाति की। संतों की यात्रा का यही उद्देश्य होता है। वैसे यात्रा लोक संस्पर्श का एक प्रभावी माध्यम है। सम्प्रदाय विशेष की यात्राएँ अपने आराध्य के नाम पर घोषित होती हैं पर उनका उद्देश्य भी लोक कल्याण ही होता है। दुष्प्रवृत्तियों के शमन और साधुता की स्थापना हेतु भी यात्राएँ होती हैं। धर्माचार्य की यात्रा में विकृतियाँ विगलित होकर बह जाती हैं। युवा मन में यदि विकार है तो वह आराध्य का साकार विग्रह धारण कर लेता है। तमाम प्रकार की कालबाह्य रूढ़ियों को यात्रा के संदेश से ही भंजित कर दिया जाता है, विकृतियों के मार्जन की एक शैली यात्रा में निहित होती है।

संतों की यात्रा को बादल के ठौर-ठौर बरसने से उपमित किया गया है। लोककल्याण, बादल के बरसने का उद्देश्य है और संतों के यात्रा में भी यही भाव होता है। छूटे-टूटे मनो को यात्रा जोड़ती है। यात्रा मन में क्रांतिकारी परिवर्तन भी लाती है। मनों को बदलती भी है। जैसे परमात्मा कारण रहित मित्र है उसी तरह संत भी हैं, संतों में भी मानवीय विकृतियों का होना स्वाभाविक है, पर वे ग्राह्य नहीं हैं, उनका मूल स्वरूप यह नहीं है। यह तो आंतरिक विकास का एक सोपान है।

जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने विभिन्न व विविध यात्राएँ न मान-सम्मान के लिए की हैं न धन-ऐश्वर्य के एकत्रीकरण के लिए, न यात्रा में स्वयं के सुख, सुविधा की ही चिंता करते हैं। एकदम वैराग्य भाव से ये यात्राएँ समय-समय पर सम्पन्न होती रही हैं। सहभाव-समभाव से युक्त ये यात्राएँ गृहस्थ जीवन में टूटे-मनों को भी जोड़ती हैं– छूटे लोगों को भी सहयात्री बनती हैं, इसमें तो श्रीराम के – "भूमिसयन बलकल बसन, असन कंद फलमूल" की झलक दीख पड़ती है। महाराजश्री का विचार यात्राओं के संदर्भ में अत्यंत स्पष्ट है– उनका कहना है कि जब स्थाप्य ही नष्ट हो जाय तो कर्म का क्या अर्थ है? यात्रा में संकट और कठिनाई उतनी ही असुविधाजनक लगती हैं जितना प्यार अच्छा लगता है।

यात्रा विववण

ओंकारेश्वर से अयोध्या १९९५ ई.– बारह ज्योतिर्लिंगों में ओंकारेश्वर एक महत्त्वपूर्ण शिवलिंग है। अयोध्या आराध्य श्रीराम की जन्मभूमि है। इन दोनों स्थानों की महत्ता से इस यात्रा का निहितार्थ निकालने में समय नहीं लगता है। यह ६० दिनों की दीर्घावधि वाली यात्रा थी। उस वर्ष भीषण गर्मी से सम्पूर्ण उत्तरी

भारत बेहाल था। काशी के दो महत्त्वपूर्ण श्मशान घाट मर्णिकर्णिका और हरिश्चंद्र पर शवों को भस्मीभूत करने के लिए लकड़ी तक नहीं जुट पाती थी। गर्मी की इस भयावहता में यह यात्रा निरंतर ६० दिनों तक संचलित होती रही। ढाई-तीन सौ संतों-श्रीमहंतों द्वारा अनुगमित यह यात्रा, अष्टा, सनावत, होशंगावाद, धार, इन्दौर, भोपाल, सागर, सतना, प्रयाग, शृंगवेरपुर, सुलतानपुर, भरतकुण्ड होते अयोध्या तक पहुँची। यात्रा के क्रम में एक दिन में १०-१० सभाएँ की जाती थीं। यात्रा के बीच में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी.बी. नरसिंहाराव के विशेष दूत द्वारा यह संदेश आया कि मा. प्रधानमंत्री कहाँ और कैसे मिलें? महाराजा जी ने कहा कि जैसे मिलते रहे हैं उसी तरह मिलें। पूरी यात्रा में न धन लिया गया न चंदा ही। यह अपने में अनोखी अद्‌भुत अप्रतिम यात्रा थी।

मार्ग में जगह-जगह स्वागत व शोभायात्राएँ विशेषप्रकार की गरिमा प्रदान कर रही थीं। स्वागत में जन संकुल उमड़ पड़ता था। सबके हाथोंमें नारियल व मुद्राएँ थीं। प्रसिद्ध समाजसेवी रामेश्वर निखरा साथ में चल रहे थे। ५ मिनट में पूजन वितरण १५ मिनट में प्रवचन। निर्माणाधीन मंदिर में ११ हजार रु. का दान दिया। उसके तत्काल वाद ही २१ हजार रु. चढ़ावे में आ गये। अखंड दीप, अखण्ड कीर्त्तन मंडली, सहस्रार्चन में एक-एक हजार वस्तुओं का चढ़ावा। यात्रा के क्रम में ही रामनवमी का का त्यौहार पड़ा– तब तक पूरी यात्रा इंदौर पहुँच चुकी थी। इंदौर के राममंदिर में विशिष्ट तैयारी हुई। एक भजनीक ने 'भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्याहितकारी' की ऐसी समा बाँधी कि पूरा माहौल राममय हो गया। एक हजार चाँदी के सिक्के चढ़े। ऐतिहासिक रामनवमी हुई। वहीं 'रामरथम्' प्राप्त हुआ। मुख्य समारोह इंदौर स्थित गीता भवन में हुआ। वह अद्‌भुत अनुपम व अद्वितीय था। पीथमपुरा म.प्र. का बहुत बड़ा औद्योगिक क्षेत्र है। प्रसिद्ध उद्योगपति इण्डोरामा ने एक हजार मीटर कपड़े का दान किया। समापन पर सभी वस्त्र बाँट दिए गए।

पूरी यात्रा में कुछ कार्य ऐसे थे जो नित्य नैमित्तिक रूप से आद्यन्त सम्पन्न होते रहे। अखंड नाम संकीर्त्तन, श्रीराम का विधिवत पूजन, सामूहिक हवन यज्ञ, गुरुपूजन–भक्तों द्वारा, वर्तमान आचार्य का प्रवचन, प्रत्येक दिन पत्रकारों से वार्त्ता, गाँव के मुख्य देवों की पूजा, विशिष्ट देवों का पूजन, भण्डारा तत्पश्चात विश्राम। यात्रा में भीषण गर्मी थी पर प्रतिदिन अपराह्न ४ बजे यात्रा प्रारंभ करते ही बादल आ जाते और बूँदाबूँदी भी होती थी। यह दृश्य देखकर गर्मी से बेहाल आमजन

हर्ष से भर उठते थे। यह क्रम ५० दिनों तक लगातार चला। यात्रा का क्रम भोपाल के निकट पड़ावों से होता हुआ जबलपुर, सतना चित्रकूट, प्रयाग, नंदीग्राम, विराम करता हुआ अयोध्या पहुँच गया।

अयोध्या में रामजन्मभूमि आंदोलन के बाद कोई भी सभा सफल नहीं हुई थी। यह एक प्रकार की लोक धारणा बन गयी थी। सरयू के किनारे विशाल सभा हुई। शंका, भय, प्रतिशोध और किसी अनहोनी का दृश्य लोगों को लग रहा था कि अब घटित हुआ कि तब। विहिप के कुछ लोग यात्रा का विरोध कर रहे थे। म. ज्ञानदास का ग्रुप विरोध में था और रामानंदाचार्य बनने पर यह चुनौती भी दिया था कि 'अयोध्या आकर देखें।' यह चुनौती स्वीकार करते हुए महराजश्री ने अपने आराध्य की प्राकट्य भूमि अयोध्या में यह यात्रा सम्पन्न की। अखिलेश्वर दास के यहाँ ठहरे। कई जगह भक्तों पर हनुमानगढ़ी की ओर से आक्रमण भी किए गए पर यात्रा कभी रुकी नहीं। नृत्य गोपालदास ने तो अयोध्या ही उस समय छोड़ दिया। पूजन न हो पाए वैरागियों ने दुकाने बंद करा दी फिर भी सफल पूजन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। धर्म की रक्षा हेतु मानस भवन में विशाल सभा हुई। पूरी यात्रा में न विहिप की एक शब्द में निंदा की गई न रामजन्म भूमि मुक्ति आंदोलन की। सर्वत्र राम भाव का विस्तार हुआ। यात्रा अत्यंत सफल हुई।

श्रीमठ की सेवा में महाराजश्री का अवदान

श्रीमठ रामावत सम्प्रदाय की मूल आचार्यपीठ है। स्वामी रामानंद ने इस साधना भूमि पर एक शताब्दी तक तपस्यारत रहते हुए रामभक्ति के सगुण-निर्गुण स्वरूप का प्रवर्त्तन किया। उनके बारह शिष्य विभिन्न जाति समूहों से आए हुए थे। श्रीमठ का प्रभाव १४-१५वीं शती में सर्वाधिक रहा है। प्रसद्धि है कि श्रीमठ की सुरंग (गुफा) ५ मील में फैली हुई थी। उसी सुरंग (गुफा) के भीतर स्वामी रामानंद की तपोभूमि थी। बारह शिष्यों के अतिरिक्त उनके पचीस हजार विरक्त शिष्यों की चर्चा भी धार्मिक इतिहास में की जाती है। निश्चित ही ऐसे बड़े महात्मा की तपोभूमि कई प्रकार की विशिष्टताओं से युक्त रही होगी। साधु-संन्यासी, वैरागी, तपसी, साधक, महंत, तांत्रिक, भक्त,, गृहस्थ, राजाश्रय प्राप्त व्यक्ति स्वामी जी के प्रभाव से अभिभूत रहे होंगे। अनेक राजाओं, नगरसेठों, बादशाहों को स्वामी जी का आशीष मिलता ही रहा होगा। ऐसे में उनकी साधना भूमि भी एक गरिमा के अनुरूप रही होगी। इसलामी शासन काल में ऐसे महत्त्वपूर्ण धर्म केन्द्रों को धूलधूसरित करने का अभियान चला। उसी में, काशी के विश्वनाथ,

मथुरा की श्रीकृष्ण जन्मभूमि स्थली, अयोध्या की रामजन्म भूमि भूलुंठित कर दी गई। विष्णु काशी का प्रमुख धर्म-संस्कृति केन्द्र श्रीमठ भी उसी समय तोड़-फोड़कर नष्ट कर दिया गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। तमाम साधु-संत महात्मा अतताईयों के भय से ग्रंथों के साथ सुरक्षित स्थानों पर पहुँच गए। राजस्थान में रामानंद सम्प्रदाय की यही कहानी है, यद्यपि वे शिष्य स्वामी रामानंद की ऊँचाई नहीं प्राप्तकर सकते थे फिर भी स्वामी जी द्वारा प्रवर्तित भक्ति के आलोक में अनुकूल वातावरण प्राप्तकर मूलपीठ से भी अधिक बाह्य साज-सज्जा और भौतिक विकास में आगे निकल गए थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अन्य राज्यों में इस सम्प्रदाय की व्यापकता है।

१९८५ ई. के पूर्व के विद्वान् श्रीमठ में मात्र चरणपादुका की चर्चा और कतिपय छोटे-मोटे बचे चिह्नों का उल्लेख कर यह कहते रहे हैं कि स्वामी रामानंद की गुफा को औरंगजेब ने तुड़वा कर धरहरा मस्जिद की स्थापना कर दी। सत्य होते हुए भी ये कथन अपूर्ण लगते हैं। आज श्रीमठ का विकास कई कोणों से प्रशस्त लगता है। १९८८ के दिसम्बर माह में वर्तमान जगद्गुरु श्रीरामनरेशाचार्य का रामानंदाचार्य पद पर अभिषेक होते ही श्रीमठ का प्राचीन गौरव पुनः झाँकता नजर आने लगा। यद्यपि वर्तमानाचार्य के पूर्व श्रीमठ का पुनर्निर्माण अरविन्दभाई मफतलाल समूह द्वारा कराया गया था– पर वह स्वामी जी और सम्प्रदाय की गरिमा के अनुकूल नहीं था। स्थापित विग्रह अकुशल शिल्पियों की अक्षमता व्यक्त करते हैं तो विग्रहों का क्रम भी ठीक नहीं था। छोटी-छोटी कदकाठी की बनी मूर्तिर्यां न स्वामी रामानंद के व्यक्तित्व को उभारती थीं और न शिष्यों के। हनुमानजी का विग्रह लोहे का बना था जो अशोभनीय था। टीन के दरवाजे स्तर को पतनोन्मुख करते थे। नीचे का हाल आधा लौह निर्मित चद्दरों से घिरा था तो आधा से अधिक अव्यवस्थित और खुला था। यद्यपि अरविन्द भाई मफतलाल समूह की इच्छा थी कि बड़ा मंदिर बने; पर न तत्कालीन संत उसमें रुचि लिए न व्यवस्था ही।

जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य के रामानंदाचार्य बनते ही इस आदि पीठ में कई महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। प्रथमतः तो स्वामीरामानंद, पीपा, कबीर, रैदास और हनुमत विग्रहों को कलात्मक और गरिमा के अनुकूल लगवाया गया। पूरा मंदिर सागौन की लकड़ी से बना। कमरे और प्रशस्त हुए। संगमरमर इत्यादि का प्रयोग खूब किया गया। अतिथि कक्ष, श्रीराम जी का भव्य मंदिर अलग तल पर निर्मित हुआ

जिसमें आज से एक दशक पूर्व ही २.५० लाख रु. का मात्र पीतल निर्मित दरवाजा लगा। अन्य हिस्सों में स्तरानुरूप संशोधन परिवर्द्धन हुआ। अब श्रीमठ केवल चरणपादुका वाला आश्रम नहीं अब तो एक सुसज्जित दिव्य भवन का रूप ग्रहण कर चुका है। अभी भविष्य की अनेक महत्त्वाकांक्षी योजनाएँ उसमें क्रियान्वित होने वाली हैं। महाराजश्री की इच्छा है कि इसी रजयजयंती वर्ष में श्रीमठ के चारों तरफ लगे लौह उपकरणों को विस्थापित कर राजस्थानी पत्थर से उसे सजाया जाय और पुन: संगमरमर का प्रयोग कर उसे भव्यता प्रदान की जाय।

'श्रीबिहारम्' महाराजश्री के गुरुदेव की साधनाभूमि है। १९९५ ई. से लगातार वहाँ निर्माण कार्य चल रहे हैं। यह वर्तमान आचार्य की अपने गुरुदेव के प्रति आत्यंतिक निष्ठा का प्रमाण है। यहाँ प्राय: ५० कमरे बनकर तैयार हैं। महाराजश्री के रामानंदाचार्य बनने के २५वें वर्ष (२०१४) में यहाँ चातुर्मास महोत्सव सम्पन्न हुआ। अत: युद्धस्तर पर सभी कमरों, अमराबापू सभागार इत्यादि को भव्यता देने का कार्य पूर्ण हो चुका है।

महाराजश्री की इच्छा है निकट भविष्य में हरिद्वार में निर्माणाधीन अद्वितीय श्रीराम मंदिर की तरह देश के चारों कोनों पर परब्रह्म श्रीराम के चार मंदिर बनें। इसकी भी सैद्धांतिक कार्ययोजना बन चुकी है। साथ ही रामानंदाचार्य बनने के २५वें वर्ष में देशव्यापी सांस्कृतिक एवं अकादमिक कार्यक्रमों को सम्पन्न कर लिया गया है। जिसका विवरण विस्तार से महाराजश्री को केन्द्रित कर निकलने वाले ग्रन्थ में दिया गया है। प्रकाशन में महराजश्री की अभिरुचि विद्वतजनों की प्रसन्नता का कारण है। लगभग १४ ग्रंथ आप की प्रेरणा से प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीमठ समग्र के अन्तर्गत सात खण्डों की महत्वाकांक्षी योजना है जिसमें दो खण्ड डॉ. उदय प्रताप सिंह के सम्पादन में प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक कुम्भ के अवसर पर एक मानक ग्रंथ श्रीमठाधीश की सन्निधि में प्रकाशित होना महत्त्व की बात है। ऐसे तीन ग्रन्थों का संपादन डॉ. उदयप्रताप सिंह कर चुके हैं। पहला प्रयाग– दूसरा हरिद्वार और तीसरा भी प्रयाग पर। भविष्य की योजना में महाराजश्री का संकल्प है कि रामानंद सम्प्रदाय में जितने भी राष्ट्रव्यापी सिद्ध, संत-महंत हुए हैं उनके जीवन-चरित्र और सिद्धियों पर एक ग्रंथ प्रकाशित हो। उसमें उनकी तपस्या, सिद्धि, चमत्कार और लोक कल्याणक कृत्यों की चर्चा की जाएगी। उपलब्ध चित्रों का भी यथावसर प्रयोग किया जाएगा। कुछ ऐसे सिद्धसंत हैं जो आज एक सौ वर्ष का जीवन व्यतीत कर चुके हैं उनकी भी भरपूर सामग्री से पूर्ण यह ग्रंथ लोकप्रियता की सीमा लाँघ जाएगा ऐसी महराजश्री की इच्छा है।

महाराजश्री की एकांतिक साधना– रामानंदाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए महाराजश्री रामनरेशाचार्यजी को २५ वर्ष व्यतीत हो गए। इस लम्बी अवधि में उन्होंने एक-एक माह के छह एकांत वास देश के विभिन्न प्रमुख तीर्थों में सम्पन्न किया है। वैसे संतों का निवास उनकी साधना भूमि होती है। पर जनसंकुल से निकल कर एकांत में रहने का भाव ही कुछ और होता है। भीड़ में ध्यान भंग होना अनुभूति की गहराई में उतर पाना स्वाभाविक है। अत: श्रेष्ठ संत एकांतिक साधना को अनादि काल से महत्त्व प्रदान करते चले आ रहे हैं।

एकांत साधना में मित भाषण, मित भोजन, लौकिक व्यवहार को सीमांकित करना, संयमपूर्ण जीवन जीना, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह जो सहजात प्रवृत्तियाँ है इनसे यथासंभव दूर रहना ही अभिप्रेत होता है। साथ ही जप-तप, ध्यान, प्रभुस्मरण को महत्त्व देना निरंतर मानव कल्याण की भावना से प्रेरित हो प्रभु की पूजा करना, साधना व स्वाध्याय करना, इस प्रक्रिया के प्रमुख कारक हैं। इंद्रिय संयम, गीता, रामायण, स्मृति, उपनिषदों आदि शास्त्र ग्रंथों का स्वाध्याय, वेद मंत्रों की साधना, ईर्ष्या, क्रोध, प्रेम, घृणा सबसे विरहित हो जाना ही एकांत साधना की सिद्धि हैं। लोक संग्रह की भावना से परिपूर्ण साधक जब लोकमंगल की अनुभूति से आपूरित हो उठता है तो उसमें एक ऐसी अक्षय ऊर्जा का प्रकटन होता है– जिससे मानव समाज (भक्त समाज) आलोकित हो उठता है। एकांत साधना से ताजा-ताजा समाज में आने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कायाकल्प हो गया है। इस साधना से पूर्व की ऊर्जा जो क्रियाविहीन होने के कारण सुषुप्तावस्था में होती है वह भी जागृत हो एक शक्ति का रूप धर लेती है। ऐसी टिप्पणी भक्तों की ओर से भी आती रहती है।

महाराजश्री ने पुष्कर, अमरकंटक, शिमला के सीमांत भाग पर स्थित रमणीक प्राकृतिक स्थल, शिमला से दूर जंगली भूभाग में, बदरीनाथ धाम में तथा द्वारकाधीश तथा रामेश्वरम में एकांतवास सम्पन्न कर चुके हैं। ये सभी स्थान कोई तीर्थ की दृष्टि से तो कोई साधना की दृष्टि से उत्तमोत्तम माने जाते हैं। महाराज श्री का इन एकांत क्षणों के संदर्भ में कहना है कि इनमें चिंतन, साधना, विचार, स्वाध्याय का उत्कर्ष और सांसारिक प्रवृत्तियों का निरसन, स्वत: होता रहता है। इस एकांतवासी साधना की ऊर्जा सुरक्षित रहती है उसका शत-प्रतिशत उपयोग चातुर्मास में समाजिक हित के लिए किया जाता है। अत: एकांत साधना का प्रयोग किसी भी संत को महासंत बना देता है। महाराजश्री की प्रबल इच्छा है कि देश

के सभी प्रमुख तीर्थों में एकांत साधना का क्रम निरंतर प्रतिवर्ष चलता रहे। इससे जप-तप-श्रद्धा और तेजस्विता में वृद्धि होती है। लोक कल्याणक भावों का सम्बर्द्धन होता है। यह महाराजश्री के साधु जीवन की बड़ी उपलब्धियों में गिना जाता है।

महाराजश्री द्वारा सम्पादित चार शतमुखकोटि होमात्मक यज्ञ– यज्ञ भारतीय संस्कृति का रीढ़ है। वैदिक काल से यज्ञों का महत्त्व सर्वविदित है। कुछ लोगों का यह कथन भ्रमपूर्ण लगता है कि यज्ञ संस्कृति में हिंसा की प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्धधर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक यज्ञ संहिता में लिखा है कि जहाँ कहीं भी खून की एक बूँद गिरी हो वहाँ यज्ञ करना वर्जित है।यज्ञ को धर्मस्वरूप ही कहा गया है। वैसे भारतीय चिंतन में दान-पुण्य माता-पिता की सेवा, गुरुजन, ब्राह्मण, गौ सेवा सब धर्म के ही स्वरूप हैं। पर शास्त्रानुसार यज्ञ धर्म का सबसे बड़ा स्वरूप है। जीवन में वायु, जल, आकाश, तेज का बहुत महत्त्व है। देवताओं को उद्दिष्ट कर द्रव्य त्याग ही यज्ञ कहा गया है। यज्ञ का विधान सभी के लिए है। वैदिक संस्कृति का प्रत्येक उपादान मानव समाज के लिए ही है। कुछ-कुछ बदलते रूपों में इसी प्रकार का विधान अन्य धर्म-सम्प्रदायों में भी किया गया है– जैसे बौद्धों में जलाने की व्यवस्था इसी का परिवर्तित रूप है।

पचीस वर्षीय रामानंदाचार्य के रूप में महाराजश्री ने चार यज्ञों का शास्त्रोक्त विधि से संपादन किया।

शतमुखकोटि होमात्मक श्रीराम महायज्ञ, काशी

यह यज्ञ स्वामी रामानंदाचार्य के सप्तशताब्दी वर्ष के क्रम में काशी में सम्पन्न हुआ था। इसमें सप्तमंजिला पाण्डाल आकर्षण का केन्द्र था। वेदों, पुराणों, दासबोध, रामानंदी ग्रंथों तुकाराम के छंदों का सस्वर पाठ इस यज्ञ में सम्पन्न हुये थे। एक सौ कुण्ड व एक करोड़ की आहुतियों से यज्ञपूर्ण हुआ। इस यज्ञ के पांडाल में १२ द्वार स्वामी रामानंद के बारह शिष्यों के नाम पर बने थे। इसमें हरिजन-गिरिजन सम्मेलन, विद्वत् गोष्ठी इत्यादि का भव्य आयोजन हुआ। काशीवासियों ने हुंकार भरकर कहा कि ऐसा यज्ञ काशी में कब हुआ था स्मरण नहीं आता। काशी के उपरांत चण्डीगढ़ में भव्य शतमुखकोटि यज्ञ का आयोजन हुआ। पांडाल कुश निर्मित था। उसे बिहार के कुशल कारीगरों ने बनाया था; यह यज्ञ भी गरिमा के साथ सम्पन्न हुआ। लीला इत्यादि करने वाले मथुरा से आये भक्तों को पर्याप्त दक्षिणा आदि देकर विदा किया गया। तदनंतर म.प्र. के जबलपुर

में तीसरा यज्ञ हुआ। नर्मदा के मनोहर तट पर इस यज्ञ की शोभा गोला गोकर्ण के प्राचीन यज्ञ जैसी दिख रही थी। काशी और अन्य धर्म क्षेत्रों के ब्राह्मणों के निर्देश में सम्पन्न यह यज्ञ भी ऐतिहासिक हो गया। यहाँ भी विद्वान्, ब्राह्मण, हरिजन, दलित और नारी सम्मेलन हुआ। सभी पारंपरिक प्रवृत्तियाँ यहाँ भी हुई। बक्सर, बिहार में चौथा यज्ञ विशाल स्तर पर सम्पन्न हुआ। यह महाराजश्री के रामानंदाचार्य बनने और उनकी षष्ठिपूर्ति वर्ष में सम्पन्न हुआ। यज्ञ की महत्ता एवं रामानंदाचार्य पद की रजत जयंती दोनों दृष्टियों से यह महत्त्वपूर्ण समायोजन कहा जाएगा। बक्सर धर्म का प्राचीन क्षेत्र है। पुरावैदिक काल से ही गंगा के किनारे यहाँ यज्ञों की एक दीर्घ परम्परा मिलती है। इस यज्ञ का महात्म्य इसलिए भी बढ़ जाता है कि रामानंद सम्प्रदाय के परमाचार्य भगवान् श्रीराम ने भी यहाँ विशाल यज्ञ किया था। रामावत सम्प्रदाय तो उन्हीं का अनुगमन है– अनुगामी है। श्रीराम के कर्म ही रामराज्य की अवधारणा बनाते हैं। यह यज्ञ भी उसी दिशा में रामराज्य बनाने का एक आधुनिक प्रयास लगता है।

इस महायज्ञ में साधु-सम्मेलन, विद्वत सम्मेलन तो हुआ ही भण्डारे की दिव्य व्यवस्था भी की गई थी। जो जब भी आया बिना भण्डारा का प्रसाद ग्रहण किए नहीं गया। निरंतर नौ दिनों तक मिनरल वाटर, चाय की बाढ़ सी थी। यहाँ के प्रबंधकों ने यज्ञ के इस रूप में सम्पन्न होने पर प्रसन्नता व्यक्त की और महाराजश्री के विशेष कृपापत्र भी बन गए।

महाराजश्री का संकल्प है कि देश के सभी प्रांतों में एक महायज्ञ सम्पन्न हो। इसकी कार्य योजना निर्मित हो गयी। इस प्रकार यज्ञमयी संस्कृति को अनवद्यता-निरन्तरता में प्रकट करने का यह बड़ा उपक्रम महाराजश्रीरामनरेशाचार्य द्वारा सम्पन्न हुआ।

श्रीमठ का आर्थिक स्रोत एवं वर्तमान स्थिति :

धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण व प्राचीन होते हुए भी श्रीमठ के आर्थिक स्रोत उसकी गरिमा के अनरूप नहीं थे। स्वामीरामनरेशाचार्य ज.गु.रा. बनने के पूर्व और बहुत दिनों तक उनके पदाभिषिक्त होने के बाद भी श्रीमठ अर्थ की दृष्टि से अत्यंत दुर्बल ही रहा है। स्वामी रामनरेशाचार्य को जगुरामानंदाचार्य बनाते समय ट्रस्ट कमेटी के सदस्यों ने कहा था कि आप को किसी आर्थिक समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। आप केवल रामानंदाचार्य पद स्वीकार कीजिए। इसी आशा व विश्वास पर श्री रामनरेशाचार्य ने पद स्वीकार

किया था कि साधुता का प्रतिमान उनकी सेवा बनेगी और विस्तार के व्ययादि का ताना-बाना कमेटी के लोग बुनेंगे, पर दुखद है कि ऐसा कुछ भी नहीं हो सका। ट्रस्टी लोग टाट उलट दिए और वर्तमान जगुरामानंदाचार्य को श्रीमठ को अद्यतन बनाने में भगीरथ प्रयास करना पड़ा।

अवशिष्ट श्रीमठ एक कक्ष मात्र था। उसी में स्वामी रामानंद और हनुमान जी का विग्रह' विद्यमान था। उस समय ट्रस्ट कमेटी के खाते में दो लाख पचहत्तर रु. थे जो १९९७ ई. से विवाद के कारण सील है। उससे मात्र १५०० रु. व्याज के आते थे जिससे श्रीमठ की प्रवृत्तियाँ संचालित होती थीं। तत्कालीन म. श्री अवधबिहारी दास जी कुछ अलग से व्यवस्था करते थे। किसी तरह प्रतिदिन का व्यय भार चलता था। अवध बिहारी दास ने गोदरा के महंत और कमेटी के सदस्य से अपेक्षाकृत अधिक आय देने का आग्रह किया था; पर वह स्पष्ट मना कर दिए। कुछ दिनों पश्चात् १०००/- ट्रस्ट द्वारा बढ़ाकर ढाई हजार कर दिया गया। इस प्रकार आर्थिक तंगी से जूझता रहा श्रीमठ और आय के सब दरवाजे बंद होते रहे। सभी गतिविधियाँ मंद गति से सम्पन्न होती थीं और कोई विशेष उत्सव नहीं सम्पन्न हो पाता था। इस विपन्नावस्था से श्रीमठ को जीवंत, जाग्रत और उत्सवप्रिय बनाने में वर्तमान रामानंदाचार्य की अहम भूमिका अत्यंत सराहनीय रही है।

आज श्री मठ को देखने से प्रतीत होता है कि ३०/३० का आश्रम उसका सौ गुना विस्तार प्राप्त कर चुका है। स्थान तो वही है– जगह भी उतनी ही है– पर दैनिक प्रवृत्तियों में जो विस्तार हुआ है, जो उत्कर्ष आया है उसे देखकर श्रीमठ की अतीत की स्मृतियाँ ताजा हो उठती हैं। पहले कंट्रोल की चीनी, कंट्रोल का चावल, गेहूँ और तेल से श्रीमठ चलता था पर आज भाण्डार भरे हैं। य़ही नहीं इसकी प्रमुख शाखाओं, जबलपुर, हरिद्वार, प्रयाग में दैनिक जीवन की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। पहले कोई प्रकाशित साहित्य नहीं था आज दो दर्जन पुस्तकें श्रीमठ के विविध आयामों से संदर्भित प्रकाशित हो चुकी हैं। छात्रवृत्ति (मेधावी छात्र) की पूर्ण व्यवस्था है। यहाँ महाराजश्री ने ऐसे विद्यार्थियों की विशेष व्यवस्था कर रखी है जो उच्च प्रतियोगी परीक्षाओं में धनाभाव के कारण सम्मिलित होने से वंचित हो जाते हैं। उत्सवों को तो एक पंक्ति बन गई है। कार्तिक का पूरा माह, चैत्रारामनवमी, चातुर्मास व्रत (दो माह) विद्वत्-संगोष्ठी, रामभाव प्रसार यात्राएँ वर्षानुवर्ष से आद्यावधि निरंतर चल रही हैं। श्रीमठ संगीत महोत्सव तो दसेक लाख के व्यय तक पहुँच गया है। यद्यपि संगीत समारोह काशी में संकट मोचन

मंदिर पर वर्ष में दो बार राष्ट्रीय स्तर पर होता है; पर धुर नगर के लोग वहाँ नहीं पहुँच पाते हैं। यह समारोह रामघाट पर अत्यंत गरिमा के साथ गत चार वर्षों से सम्पन्न होता आ रहा है।

यद्यपि श्रीमठ का भारी व्यय भार आकाश वृत्ति से ही सम्पन्न होता है पर न कहीं रुपया बचाने की प्रवृत्ति है न कहीं लोभ-वृत्ति ही। यहाँ साधु, महात्मा, जरूरतमंद, लोग, विद्यार्थी, विद्वान, सभी अपनी-अपनी प्रवृत्तियों का संचालन ढंग से करते रहते हैं। किसी भी स्थायी स्रोत के न होते हुए भी मात्र श्रीमठ का वही ३०/३० का आश्रम रामभक्तों की आँख का तारा बना हुआ है। सही और समुचित विनियोग का ही परिणाम है कि न यहाँ धन के प्रति कोई लालसा है न लोलुपता पर भक्तों की सेवा से कार्य निरंतर हजार गुणा बढ़ चुका है। पहले दो मीटर मारकीन की भी उपलब्धता नहीं थी अब आकाश वृत्ति के ही सहारे नये परिधान हर उत्सव पर बटुकों को प्रदान किए जाते हैं। प्राय: ५० बटुक आश्रम में रहकर विद्यार्जन करते हैं। इन टूटे बिखरे क्रमों को एक नया स्वरूप दिया है– वर्तमान आचार्य ने। 'जगुरा नि:शुल्क भोजन एवं आवास' की एक महत्त्वाकांक्षी योजना वर्तमान महाराज की है– जिसका श्रीगणेश प्रयाग के 'प्राकट्यधाम' से हो चुका है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में अन्न क्षेत्र का कार्यक्रम उत्साह के साथ चल रहा है। हरिद्वार, काशी, जबलपुर इसके प्रमुख केन्द्र हैं।

यज्ञ, प्रकाशन, संत-सेवा, संगीत महोत्सव, प्रकाशन, संगोष्ठियों इत्यादि में धर्म-नीति से ही व्यय का सम्पादन होता है। रामानंद सम्प्रदाय में अंगी-अंग का सन्तुलन ठीक नहीं है इस पर सम्प्रदाय के आचार्यों का विचार मंथन आवश्यक है। अर्थ की दृष्टि से श्रीमठ का विस्तार १५०० से एक करोड़ पचास लाख तक पहुँच चुका है। धर्म के विस्तार और श्रीमठ को प्राचीन स्थिति में लाने के लिए अभी बहुत धन की आवश्यकता है। इसे साम्प्रदायिक शाखाओं के महंतों, श्रीमहंतों को गंभीरता से सोचना है तभी मूल आचार्यपीठ प्रशस्त हो सकती है। वर्तमान स्वरूप तो महाराजश्री की दूरंदेशी दृष्टि और भक्तों की आस्था का परिणाम लगता है।

कुम्भ में महाराजश्री

कुम्भ सनातन वैदिक संस्कृति का रीढ़ है। ऐसा धर्म का प्रयोग विश्व में कहीं भी नहीं है। इसमें भारतीय धर्मों के अन्यान्य सम्प्रदाय रुचि के साथ भाग लेते हैं और गौरव के साथ विदा होते हैं। धर्म प्रेमी जनों का इतना बड़ा समूह अन्यत्र मिलना असंभव है अत: सभी सम्प्रदायाचार्य सहस्रों वर्ष से कुम्भ का अमृत मंथन

कर दान-प्रदान करते रहे हैं। इसमें राजा-महाराजा भी भाग लेते रहे हैं। प्रयाग कुंभ में हर्षवर्द्धन की दानशीलता किसी से छिपी नहीं है। रामावत या रामानंद सम्प्रदाय भी इसमें अग्रणी दिखता है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वयं रामानंद की अवतार भूमि प्रयाग ही रही है जो कुंभ का सबसे बड़ा स्थल है। जगुरारामनरेशाचार्य धर्म के इस महासंगम में आदिपीठ के वर्तमान आचार्य के रूप में वर्षों से सम्मिलित होते रहे हैं– परम्परया स्नान इत्यादि भी सम्पन्न करते रहे हैं। उनका क्रमशः विवरण दिया जा रहा है–

नासिक कुंभ १९९१ ई. : यहाँ चातुर्मास काल में ही कुंभ की लग्न पड़ती है। अतः जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य ने इस कुंभ में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। हनुमानगढ़ी के कतिपय नागाओं के विरोध के बावजूद यहाँ उन्होंने सविधि व सदलबल स्नान पूजन किया। नागाओं की धमकी भी उन्हें अपने प्रतिज्ञा से डिगा नहीं सकी। मेला अधिकारी नाईक महोदय ने आदि पीठ की गरिमा, महाराजश्री का व्यक्तित्व देखते हुए सर्वप्रथम स्नान का अवसर प्रदान किया। अन्य सम्प्रदायों के लिए यह विस्मयभरी घटना थी। सभी लोग महाराजजी और उनके अनुगत साधु-संतों, भक्तों को देखने लगे। मेला अधिकारी ने सभी अखाड़ों के महंतों को मीटिंग के लिए बुलाकर एक प्रकार से नजरबंद कर दिया और आदि पीठ के आचार्य श्रीरामनरेशाचार्य का आगमन बिना किसी अवरोध के सम्पन्न हो गया। बाद में वह महाराजश्री का अनन्य भक्त हो गया। विदा होने के पूर्व महाराजश्री ने मेलाधिकारी को चाँदी में तुलसी माला मढ़वा कर दिया– आशीर्वाद रूप में। मेलाधिकारी ने उसे सबको दिखाया। बाद में एस.पी. व कलेक्टर को भी आशीर्वाद स्वरूप यही माला भेजी गई।

मेला प्रवेश के उपरान्त महाराजश्री के महास्नान की योजना बनी। सम्प्रदाय के सभी अखाड़ों ने गाजे-बाजे के साथ स्नान कराया। महाराजश्री शाही स्नान की ताम-झाम के पक्ष में कभी नहीं रहे। अतः पैदल चलकर ही उन्होंने इसे संपादित किया। महाराजश्री के व्यक्तित्व से प्रभावित हो मेलाधिकारी ने सार्वजनिक सभा में कहा कि मेरी मेला में सबसे बड़ी उपलब्धि यही माला है। जय सियाराम का घोष हुआ और रामभाव की अमृत वर्षा चतुर्दिक होने लगी।

मेलाक्षेत्र में अखाड़ा द्वारा जमीन न प्रदान करने पर स्थानीय निवासियों ने महाराजश्री के अनुगत साधु-संतों की खूब मदद की। आवास, परिसर, प्रांगण सब तो स्थानीय लोगों ने ही दिया। इस प्रकार राम भाव का प्रसार हुआ, वर्तमान

आचार्य की एक छवि बनी और रामावत सम्प्रदाय का झंडा सबसे ऊँचा प्रतीत होने लगा। मेला में दैनिक व्यय भार के लिए न याचना की गई न चंदा की रसीद ही काटी गई, पर जितना ही खर्च हुआ उतनी आय हुई। यह सुनकर लोग चमत्कृत हो गए। नासिक के रामघाट पर इस कुम्भ में रामानंदाचार्य को फिएट कार उसी समय भक्तों द्वारा प्रदान की गई। इस कुंभ में अन्नदान व साधु सेवा की अद्भुत आँधी बहने लगी थी।

उज्जैन १९९२ ई. : १९९२ का कुम्भ, वर्तमान आचार्य, श्रीमठ, रामावत सम्प्रदाय सबके लिए मंगलकारी व श्रेष्ठतम मूल्यों का प्रदाता था। १९८९ ई. में सम्पन्न प्रयाग कुंभ की अपेक्षा अधिक मंगलकारी सिद्ध हुआ। इस कुम्भ में भी धर्म का चोला ओढ़े अधर्म की राह पर चलने वालों ने कुंभ मे न आने की धमकी दे रखी थी। पर वर्तमानाचार्य कहाँ किसी से डरने वाले। गए। और ढंग से कुम्भ का संपादन हुआ। अंकपात क्षेत्र में रामावत सम्प्रदाय का धर्म शिविर लगा था। जहाँ साधु-संत, भक्त सभी तत्पर थे– स्नान के लिए महाराजश्री के प्रवचन के लिए। यहाँ भगवन्नाम संकीर्तन, संत-साधुसेवा, अन्न क्षेत्र, की समुचित व्यवस्था थी। श्रीमठ का ध्वज तो सबसे न्यारा सबसे अलग था। यह मेला के आकर्षण का केन्द्र बन गया था। इसका विशाल स्वरूप महाराज श्री के शिविर के ऊपर और लघु स्वरूप प्रति शिविर में दर्शनीय था। इस कुंभ में महाराजश्री ने विजय उत्सव भी मनाया था जिसमें लाखों रुपए व्यय हुए थे। मूल आचार्य पीठ की ओर से यह उत्सव होना स्वाभाविक था। विज्ञापन, विद्वत-संगोष्ठी, अन्नक्षेत्र और अन्यान्य प्रवृत्तियों के हिसाब से यह एक स्मरणीय कुंभ बन गया था। विजय महोत्सव का आयोजन उस शास्त्रार्थ की स्मृति में किया गया था जब १९२२ ई. में कुंभ में ही रामानंदाचार्य भगवदाचार्य ने रामानुजियों को परास्त कर यह सिद्ध कर दिया था कि रामानंद सम्प्रदाय का पृथक् व स्वतंत्र अस्तित्व है। संतसाहित्य के मर्मज्ञ प्रो. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय द्वारा संपादित पुस्तक 'अमृत कलश' का यहीं लोकार्पण हुआ। इसी कुंभ में डाकौर के महंत श्रीमाधवदास ने महाराजश्री के पास एक संदेश भेजा कि हमलोग महाराजश्री को तिलक लगाकर भरपूर विदाई कर रामानंदाचार्य के विवाद को समाप्त करना चाहते हैं। महाराजश्री ने अपने सार्वजनिक प्रवचन में स्पष्ट रूप से कहा कि "मैं तो रामानंदाचार्य हूँ ही आप बनाएँ या न बनाएँ। मेरा संस्कार वही है। आप सभी तो पैसे के मोह में 'रामानंदाचार्य' की घोषणा करते हैं। मैं खुले मंच से कह रहा हूँ कि रामानंदाचार्य

का क्या रेट हैं? क्या कीमत है? बताएँगे। मैं उतना प्रतिवर्ष आप सभी को दूँगा– पर अनेक व नकली रामानंदाचार्य बनाने का यह खेल खत्म होना चाहिए। आप सभी स्वयं बताएँ– श्रीमठ आदि पीठ है– उसमें अर्थ कितना है, सम्पत्ति कितनी है– क्या यह सबकी जिम्मेदारी नहीं है कि बृद्ध बाप को भोजन पहले दिया जाय– बाद में स्वयं किया जाय।" यह सुनते सभी सन्नाटे में आ गए। सबकी आँखें खुलीं। म. माधवदास ने कहा कि "हमें रामानंदाचार्य मिल गए। अब किसी अन्य की जरूरत नहीं।" रामनाम का जयघोष हुआ। सभी रामभाव में अंदर तक भींग गए। श्रीमठ, स्वामी रामानंद, जगुरारामनरेशाचार्य की एक अलग छवि ही इस कुम्भ में बन गई।

मेलाधिकारी जैन जी ने पूछा कि 'कैसे हैं महाराज जी।' महाराज जी ने कहा कि– 'विदा होते समय यह समाचार पूछना भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं कहा जाएगा। आप मेला अधिकारी हैं यह प्रश्न प्रारंभ में पूछना चाहिए। वह अवाक्। पत्रकारों ने पूछा मेला में आप (अधिकारी) किससे प्रभावित हैं– सभी एक स्वर में बोलने लगे कि वे मेला नहीं महाराज श्रीरामनरेशाचार्य से प्रभावित, उनके प्रवचन से प्रभावित हैं, उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हैं– उनके राम से प्रभावित हैं– सब मिलाकर उनके सम्प्रदाय व स्वरूप से प्रभावित हैं।

बिहार प्रदेश की यात्रा– शताब्दियों से बिहार रामानंद सम्प्रदाय का गढ़ रहा है। आज भी वहाँ सर्वाधिक आश्रम रामानंद सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं। बिहार के मोहनियाँ से प्रारंभ यात्रा का प्रथम पड़ाव महाराणा प्रताप कालेज में होता है। महाराजश्री को सुनने वहाँ अपार जनसमूह उमड़ पड़ा। महाराजश्री का ऐतिहासिक प्रवचन हुआ। पुनः यात्रा सासाराम में प्रवेश करती है। यात्रा बिहार के तहसील गाँव से प्रारंभ होकर प्रदेश की राजधानी में पर्यवसित हो गई। इस यात्रा में सर्वाधिक युवा जन थे जिनके मन में श्रीराम के प्रति अपार आस्था थी। नये स्थान और नई उम्र के भक्तों ने इस यात्रा में एक विशेष प्रकार का आकर्षण उत्पन्न कर दिया था। गाँव में इतने बड़े संत का प्रवेश उन लोगों के लिए एक कुतूहल का विषय था। सभी सहमे थे कि कैसे प्रबंधन होगा? पर जगुरामानंदाचार्य के प्रवेश करते ही सब कार्य स्वतः होता गया। वहाँ की समिति ने ही सब कुछ किया। इस प्रकार के पलक पाँवड़े बिछाना बिहार की भावातिशयता व धार्मिकता का ही प्रमाण है।

मंच पर न बैनर था न कोई अन्य सूचनात्मक चिह्न ही फिर भी युवक सीखें– इस दृष्टि से न कोई टिप्पणी की गई न हतोत्साहित ही। यह एक प्रकार

से उन युवकों को धर्म के संस्कार में दीक्षित करने की प्रयोगशाला थी। बिहार की राजधानी पटना में महाराज जी ने कहा कि "अन्याय के धन से कभी सुख समृद्धि नहीं हो सकेगी। अत: सबको रामभाव लाकर स्वयं के जीवन को और समाज के जीवन को उन्नत बनाना होगा। बिहार कभी धर्म का केन्द्र था तब यह सुखी भी था। केवल राजनीति की गिरावट से बिहार का पतन नहीं हुआ है; अपितु धार्मिक संगठनों के टूटने व कमजोर होने से भी अवनति हुई है।"

बत्तीस दिवसीय बिहार यात्रा (११-११-२००६–१३-१२-२००६)– अनाहूत यात्रा, स्वत: स्फूर्त यात्रा, गाँव तसहील, जनपद और राज्य राजधानी पटना में समापन हुआ। अपरिचित क्षेत्र। यात्रा संयोजक युवा लोग थे। वयोवृद्ध युवा वर्ग को प्रोत्साहन व प्रेरणा दे रहे थे। कोई न दुव्यर्सनी था न जीविका विहीन था। पारिवारिक व सामाजिक जीवन निष्कलंक था। युवकों को देखकर अन्य युवा भी प्रेरित हुए। प्रवेश करते ही स्वागत करते थे यह स्वागत समारोह एक शोभा यात्रा बन जाती थी। यह दृश्य सर्वत्र था। तत्पश्चात् सभा का समायोजन होता था।

गाँव में दूसरे दिन प्रात: तक हवन-पूजन व कीर्त्तन, मंडली द्वारा होता रहता था। भगवन्नाम संकीर्त्तन निरंतर चलता रहता था। यह संकीर्त्तन सभी यात्राओं में चलता था। **विचारक, चिंतक और परम भक्त श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार का कथन था कि सम्पूर्ण क्रांति के लिए भगवन्नाम संकीर्त्तन आवश्यक है।**

यात्रा के क्रम में महाराजश्री चैतन्य महाप्रभु, गाँधी-पोद्दार की तरह दिखते थे। रामभावाभिषिक्त लोगों का अभिनंदन, पत्रकारगोष्ठी, जिज्ञासा-संगोष्ठी समाधान नित्य का क्रम था। प्रात: भण्डारे में सभी सहयोग करते थे। सब कुछ साथ में था। याचना कहीं नहीं की जाती थी। रामभाव प्रसार ही यात्रा का उद्देश्य था। कहीं एक दिन कहीं दो दिन कहीं तीन दिन तक रुकना पड़ा। नगर सेठ के कहने पर भी महाराजश्री ने कहा कि डेरा जहाँ पड़ गया अब वहीं रहेगा। परिवर्तन नहीं होगा।

प्रवचन में महाराणा प्रताप के राष्ट्रीय अवदान की चर्चा महाराणा कालेज के प्रांगण से ही की गई। विशाल धर्म सभा हुई। रामानुजी परंपरा में दो प्रवचन हुए। दो सभाएँ सासाराम में भी सम्पन्न हुईं। जिन गाँवों में कोई संत कभी नहीं गए थे। वहाँ यात्रा पहुँची। लोगों की प्रतिक्रिया थी कि अब संत भी व्यापारिक हो गया है। अब साधु गाँव में नहीं जाता है। सनातन धर्म की गिरावट से साधु-व समाज दोनों ही दुरवस्था को प्राप्त हो गए हैं। अब इस तरह की यात्राएँ नहीं हो रही हैं। पूरी यात्रा में सुविधा असुविधा का ख्याल ही नहीं आया। सभी कठिनाईयों की उपेक्षा कर यात्राएँ सम्पन्न हुई। इन यात्राओं से रामभाव का विस्तार हुआ। जागृति आई।

बड़े कार्यक्रम के स्थल– (क) आरा नगर में जिला मुख्यालय पर तीन दिनों का बड़ा कार्यक्रम था (ख) भागीदारी भी बड़ी थी। विहटा में रामजानकी मंदिर में कार्यक्रम २५-२६ को हुआ। (ग) गया में बड़ा कार्यक्रम हुआ। शोभा यात्रा और बड़ी सभा हुई। **'विष्णु पद'**– गया का विधिविधान से पूजन भी किया गया। उसके आगे ३० किमी मुंडेरा गाँव में धूम-धाम से कार्यक्रम हुआ। सम्भ्रांत व संस्कारी गाँव था। मुजफ्फरपुर में दो दिन का कार्यक्रम था। यहाँ मेडिकल कालेज के प्रोफेसर की पत्नी ने पूरी व्यवस्था की। रामजी की बारात की तरह सेवा की।

पूरी यात्रा का समापन पटना वाले कार्यक्रम में सम्पन्न हुआ।

श्रीमठ की सेवा में तन्मय– महाराजश्री का जीवन श्रीमठ का ही जीवन है। ११/१/८८ से श्रीमठ का जीवन प्रारंभ हुआ। सम्प्रदाय के वरिष्ठ संतों व भक्तों ने परमाचार्य एवं परमाराध्य भगवान् श्रीराम जी, मध्यमाचार्य रामानंदाचार्य की प्रेरणा से श्री सम्प्रदाय की मूल पीठ श्रीमठ में महाराज श्री को स्थापित किया। वे भी सर्वात्मना समर्पित हुए। धन तो था नहीं, लेकिन अन्दर एवं बाहर दोनों ही रूपों से श्रीमठ की सेवा में स्वयं को समर्पित करने का संकल्प लिया। सेवा का क्रम आज तक चल रहा है। ईश्वर की कृपा से यह क्रम आजीवन चलता रहे यही सबकी कामना है। श्रीराम ने पूर्ण समर्थता के बाद भी रामभाव प्रसार के लिए, रामराज्य की स्थापना के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए बानर-भालुओं की सेना बनाई। संघ बनाने के दो उद्देश्य होते हैं–संघ सदस्यों में भी रामभाव की व्याप्ति हो तथा नेता की दुर्बलता को भी बल मिले। इस क्रम में साक्षात परम्परा का वर्द्धन भी होता है। १९९५ ई. में प्रयाग के त्रिवेणी तट पर अर्ध कुंभी का पर्व था। कुम्भ अर्द्धकुम्भ का जो माहात्म्य प्रयाग में उभरता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अत: यहाँ जगुरा श्रीरामनेशाचार्य का कार्यक्रम अतीव गरिमा के साथ सम्पन्न हुआ। सरकारी सुविधाएँ कम से कम ली गईं। मेलाधिकारी और एस.एस.पी. सहजत: रामानंदाचार्य का स्वरूप देखकर अभिभूत थे। अत: मेला क्षेत्र में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित हुई।

द्वारिका शंकराचार्य स्वरूपानंद के आश्रम में राममंदिर निर्माण के संदर्भ में रामालय ट्रस्ट की मीटिंग सम्पन्न हुई। दशाश्वमेध गंगा आरती की पूरी टीम वहाँ भी उपस्थित होकर कार्यक्रम को शोभायमान बना रही थी। मेला क्षेत्र में ही जगुरामानंदाचार्य की जयंती मनाई गई। १९९८ ई. में हरिद्वार कुम्भ चण्डीदेवी के नीचे गंगा क्षेत्र में शिविर लगा। यहाँ भी सभी प्रवृत्तियाँ विधिवत सम्पन्न हुईं।

२००३ में कुम्भ का प्राकट्य नासिक में हुआ। इस कुंभ में सभी भक्त पुण्यार्जन हेतु लगे थे; पर प्रकाश आडवानी की सेवा अतीव सराहनीय रही। पूरी धर्मशाला ही उन्होंने आरक्षित करा लिया था। शेष लोगों को सुसज्जित होटलों में नि:शुल्क रखा। **कालेराम भगवान** का शृंगार और छप्पन भोग की छटा वहाँ निराली थी। १२ घण्टे तक निरंतर प्रसाद वितरण होता रहा।

२००४ के उज्जैन कुम्भ में अपरिहार्य कारणों से महाराजश्री नहीं जा सके।

२००७ ई. की अर्धकुम्भी पुन: प्रयाग में सम्पन्न हुई। जगुरा के प्राकट्यधाम में यह कुम्भी निरंतर ६० दिनों तक चलती रही। इसी समय प्राकट्यधाम का जीर्णोद्धार भी प्रारम्भ हुआ और निरंतरता में २०१३ के महाकुम्भ तक परिपूर्ण हुआ। आज यह प्रयाग का प्रतिनिधिभूत आश्रम बन गया है। यहाँ स्वामी जी (रामानंद) माँ की गोद व वाल्यावस्था रूप में विद्यमान है। इस कुम्भ में स्वामी रामानंद की जयंती धूम-धाम से मनायी गई। शोभायात्रा तो निराली थी। सात हाथी, सात घोड़े ग्यारह रथ, ट्रैक्टरों का समूह, ५ बैण्ड पार्टी से उत्सव सुशोभित हुआ। स्वामी जी की जयंती मनाई गई। संतों-महंतों के तैल चित्र वग्घियों और रथों पर रखे थे। यह शोभायात्रा सप्तशताब्दी जैसी ही गरिमामूर्ण व महिमापूर्ण थी।

इसी बीच एक चमत्कारी घटना घटी हनुमान गढ़ी की चार पट्टियों में तीन को अखाड़ा परिषद् ने निष्कासित कर दिया। प्रशासन के विरुद्ध इन लोगों ने अनशन भी किया। मेला में कहीं शरण नहीं। वे लोग अपने यहाँ आ गए– संरक्षण मिला। अर्द्ध कुम्भ पर्यन्त मेला में इसी शिविर में निवास किए। महाराजश्री को मुख्य स्नान इन तीन पट्टियों के लोगों को शाही रूप में कराया। यह इतिहास की अद्‌भुत घटना थी। प्रशासन इनके साथ था। श्रीमठ द्वारा ऐतिहासिक कार्य हुआ। इस कदम की प्रशंसा पूरे मेला क्षेत्र में हुई।

सन् २०१० हरिद्वार (उत्तराखण्ड)– ज्ञानदास जो रामानंदाचार्य के परम विरोधी थे, तीन पट्टियों के बीच समझौता हुआ। तीनों पट्टियों ने मिलकर आचार्य जी से समझौता करने का निश्चय किया। ज्ञानदास अध्यक्ष अखाड़ा परिषद ने 'आपके ही चरणों में जीवन की समाप्ति होगी' ऐसा कहा। महाराज जी ने कहा कि नकली रामानंदाचार्य न बनाएँ। सम्मान स्वरूप अखाड़े ने कुम्भ में शिविर के लिए अच्छी जगह प्रदान किया। शिविर में सम्पूर्ण सम्प्रदाय के संतों-महंतों का सम्मान हुआ। प्रसाद और वस्त्र दोनों मिलता रहा। रामनवमी का महोत्सव तो अद्‌भुत था। विद्वत्गोष्ठी और पाँच विशिष्ट संतों का अभिनंदन। 'हरिद्वार समग्र'

(संपादक डॉ. उदय प्रताप सिंह) का लोकार्पण उसी अवसर पर हुआ। पाँच प्रमुख संतों शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंद गोवर्द्धनपीठ, सिद्ध संत श्री महंत ब्रह्मचारी गोपालानंद बापू पंचाग्नि अखाड़ा जूनागढ़, उदासीन महामंडलेश्वर रामस्वरूप दास जी हरिद्वार, महामंडलेश्वर अभिराम दास जी तेरह भाई, स्वामी रामानंद संत सेवाश्रम ऋषिकेश, रामसनेही खेड़ापा पीठाधीश्वर पुरुषोत्तमदास जी जोधपुर। पाँच लोगों का ऐतिहासिक अभिनंदन साधना चैनेल से प्रसारित हुआ। मान-सम्मान दक्षिणा के साथ विदाई की गई। जयकांत शर्मा, महेश शर्मा, प्रभुनाथ द्विवेदी, उदयप्रताप सिंह, वेदप्रकाश शास्त्री का अभिनंदन हुआ। मेला का एक प्रेरणादायक कार्यक्रम सम्पन्न इस घटना द्वारा मेला में अच्छा वातावरण बना पर नकली रामानंदाचार्य न बनाने के प्रति बचनबद्ध होते हुए भी नकली रामानंदाचार्य पुनः बना दिये गए। चार सम्प्रदाय जो पूरा नियंत्रण रखते हैं सभी वैष्णवों का निर्णय वहीं होता है। वहाँ श्रीमहंत रामानंद सम्प्रदाय का होता है। वहाँ महाराजश्री का पूजन, दक्षिणा, सब पहली बार हुआ। पधरावणी हुई। श्रीमठ की गरिमा के अनुसार श्रीमठ प्रतिष्ठित हुआ।

सन् २०१३ प्रयाग– यह समायोजन अपने-आप में अद्वितीय था। रामानंदाचार्य प्राकट्यधाम गरिमा व नव निर्माण के साथ स्थापित हुआ। तीर्थराज प्रयाग में सर्वाधिक सुंदर आश्रम के रूप में उभरा। सुदूर से ही प्राकट्य धाम की शोभा निरखते बनती है। आश्रम और शिविर उसी तरह मिले थे जैसे गंगा और यमुना। १४ जनवरी से १० मार्च तक अनवरत कुम्भ का अमृत मंथन व पान चलता रहा। रामकथा व विद्वत् गोष्ठी का **'जी जागरण चैनेल'** से सात दिनों तक जीवंत प्रसारण हुआ। रामानंदाचार्य पुरस्कार प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी को दिया गया। तीन ग्रंथों का प्रकाशन व लोकार्पण हुआ। 'प्रयागराज और रामभक्ति का अमृत कलश' – डॉ. उदयप्रताप सिंह, 'रामानंद सतसई– 'प्रभुनाथ द्विवेदी, वैष्णवमताब्ज भास्कर पर टीका –जयकांत शर्मा, ऐतिहासिक भण्डारों का समायोजन हुआ। १५०० स्क्वायर फुट में नवनिर्माण हुआ। प्राकट्यधाम की रंगाई, पुताई की व्यवस्था हुई। अनधिकृत रूप से रहने वाले बाहर का रास्ता देख लिए।

प्रयाग में धर्म की एक सशक्त कड़ी जुड़ी व रामभाव का प्रचार-प्रसार हुआ।

नकली रामानंदाचार्यों की बाढ़ : महाराजश्री के रामानंदाचार्य पद पर अभिषेक के एक-दो वर्ष बाद ही नकली रामानंदाचार्यों की बाढ़ सी आ गई। ज्ञानदास इत्यादि ने सर्वप्रथम हर्याचार्य को रामानंदाचार्य पद पर अभिषिक्त किया। उसके पीछे

कई प्रयोजक तत्त्व थे। पहला प्रयोजक तत्त्व था समाज के धन लोलुप आतंकी प्रवृत्ति के नागा तथा अन्य संत थे जिन्हें जगुरा के समर्थकों से बड़ी राशि की आकांक्षा थी। उन्हें ऐसा आभास था कि श्रीरामनरेशाचार्य के समर्थकों से मोटी रकम मिल सकती है। दूसरा प्रयोजकों का दल इस पद पर आरूढ़ होने का विद्वेषी था। तीसरे प्रयोजक वे थे जो जाति को आधार बनाकर जातीय विद्वेष से ग्रस्त थे। लेकिन धन की आकांक्षा उनकी पूर्ण नहीं हो सकी। जगुरा श्रीरामनरेशाचार्य के चिंतन में भी नहीं था कि धन से पद प्राप्त किया जा सकता है। अत: प्रतिक्रिया में तीनों प्रकार के विद्वेषियों ने हर्याचार्य का चुनाव किया। हर्याचार्य का चुनाव आदि पीठ श्रीमठ के लिए ही किया था, लेकिन वे श्रीमठ में प्रवेश भी नहीं कर सके। बनाने वालों का उन्हें भरपूर सहयोग नहीं मिल सका। उनका अपना व्यक्तित्व भी आचार्य जीवन की सफलता के लिए कहीं से भी पर्याप्त नहीं था, अतएव वे जहाँ पहले रहते थे वहीं सिमट कर रह गए। अपने सम्पूर्ण नकली आचार्यत्व काल में सम्प्रदाय के लिए उनका कोई अवदान प्रस्तुत नहीं हो सका। पूरे सम्प्रदाय को कुछ भी उनसे नहीं मिला और अंत में उनका कर्तृत्व तो और भी घिनौना था। अपने सगे भतीजे को अपना उत्तराधिकारी बनाकर गए। इतना ही नहीं साम्प्रदायिक प्रामाणिकों का कहना है कि वह भतीजा नहीं उनकी अपनी भाभी से जन्मा उन्हीं का औरस पुत्र है। महान आश्चर्य व कष्ट है कि इसके बाद भी उनके बनाने वालों को अयोध्यावासियों को किंवा सम्पूर्ण सम्प्रदाय को कोई ग्लानि नहीं है। हर्याचार्य के शरीर छूटने के बाद ५० संत व भक्त भी अंतिम यात्रा में उपस्थित नहीं थे। यही प्रमाणित करता है कि नकली रामानंदाचार्य समाज एवं ईश्वर को कितना प्रिय है।

दूसरे नकली रामानंदाचार्य के रूप में रामभद्राचार्य जी हुए। जिनका स्थायी निवास चित्रकूट में है। इन्हें पं. देवस्वरूप मिश्र ने (वेदांत विभागाध्यक्ष सं. सं. वि. वि.) रामानंदाचार्य बनाने का संकल्प लिया था। पूरे सम्प्रदाय में मिश्र जी साधु समर्थन के लिए घूमे, लेकिन उनका किसी ने साथ नहीं दिया। केवल दो महात्मा चित्रकूट से प्रेम पुजारी जी एवं निर्मोही अखाड़ा के श्री महंत जी पक्षकार बने। देवस्वरूप जी ने अपनी डेढ़ लाख रुपये की माँग को ३.५० लाख तक पहुँचा दिया तथा अभिषेक के ठीक पूर्व संध्या में गाली गलौज तथा अपमानित कर लौटा दिया। आचार्य अभिषेक विधि सम्पूर्णानंद संस्कृति वि.वि. में होने वाली थी लेकिन अपमानित रामभद्रदास ने हनुमानदास पोद्दार अंधविद्यालय में अपने ही भक्तों के बीच में सिंहासन पर बैठकर अपने को रामानंदाचार्य घोषित कर लिया। शास्त्रों में अंगविहीन को गुरु

होने का अधिकार नहीं है। जगुरा रामभद्राचार्य का जन्म सरयू पारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्हें सरयूपारीण देवस्वरूप मिश्र ने ही प्रवंचित किया तथा अपमानित भी किया। ईश्वर का विधान धन्य है। जातिवादिता का यह भयानक अन्त हुआ। जातिवादिता खण्ड-खण्ड हो गई। तब से आज तक उपेक्षा का समुद्र पीते हुए ये नकली रामानंदाचार्य पूरे देश में घूम रहे हैं।

परम विद्वान् रघुबराचार्य जी सिंगड़ा मठ अहमदाबाद के शिष्य रामप्रपन्नाचार्य जी भी काशी के विद्वानों को स्वल्प राशि देकर अपने को रामानंदाचार्य घोषित कर लिए। इनका यह सम्पूर्ण कार्यक्रम शीतलदास का अखाड़ा अस्सी काशी में हुआ था। पहले वहाँ से इनको अस्सी लाया गया वहाँ के महंत फिर शंकुधारा ले गए। वहाँ संस्कृत विद्यालय का जीर्णोद्धार भी किया; इसके बाद भी वहाँ के महंतों एवं भक्तों ने इन्हें काशी से भगा दिया। किसी सभा में काशी के संतों-महंतों ने इनकी दाढ़ी उखाड़ लिया तथा उनका त्रिदंड भी तोड़ डाला। काशी में दस वर्षों तक नकली आचार्य के रूप में रहने के बाद भी अपने कृतित्व एवं व्यक्तित्व से दस लोगों को भी प्रभावित नहीं कर सके। अंतिम जीवन अहमदाबाद में व्यतीत हुआ। उनके मरने के बाद रामेश्वरानंदाचार्य नकली गद्दी को सँभाले। उनके मरने के बाद सीतारामाचार्य गद्दी सँभाल रहे हैं। ए सभी लोग अपने आश्रम में ही सिमट कर रह गए।

नृसिंहदास : हरिद्वार के श्रीमहंत अयोध्यादास जी को भी रामानंद सम्प्रदाय के आतंकी नागाओं तथा धनलोलुप श्रीमहंतों ने नकली रामानंदाचार्य बना दिया। जिनका जन्म यादव कुल में हुआ था तथा जिन्हें किसी भी सद्ग्रंथ का एक वाक्य नहीं याद था। मजे की बात है कि इनके सद्गुरुदेव श्री महंत नारायणदास जी श्री रामनरेशाचार्य के रामानंदाचार्य बनने से परम संतुष्ट थे। आचार्य बनने के पूर्व भी जब श्रीरामनरेशाचार्य उनके आश्रम जाते थे तो वे खड़ा होकर इनकी विद्वता का सम्मान करते थे। उनका उत्तराधिकारी अयोध्यादास ने अपनी मूर्खता निर्णायक जड़ता तथा पदलिप्सा के कारण लुटेरों के हाथ में बिककर नकली आचार्य पद स्वीकार किया है जिसे संत-समाज आचार्य के रूप में कोई मान्यता नहीं देता। अब तो ये विनाश के कगार पर पहुँच चुके हैं।

घनश्याम भवन हरिद्वार संस्थापक महंत **रामाधार दास जी** भी नकली रामानंदाचार्य पद की लिप्सा से नहीं बच सके जब कि यह महाराज के प्रबल पक्षधर व सम्मान देने वाले थे। महाराजश्री के अभिषेक में यह काशी पधारे थे।

जिस जाति में स्वामी जी का जन्म हुआ उसी जाति एवं प्रांत में इनका भी जन्म हुआ। धन्य है स्वामी रामानंद जी की महिमा जिन्होंने जातिवाद को चलने नहीं दिया। इनको भी नकली रामानंदाचार्य बनने का कोई लाभ नहीं मिला। अपने व्यवस्था में ही अपने आश्रम में जीवन जी रहे हैं।

हंसदास : यह रामानंद सम्प्रदाय की निरंकारी शाखा में दीक्षित थे। इसके बाद उदासीन सम्प्रदाय में आ गए, उसके बाद बिना किसी से रामानंदीय दीक्षा लिए रामानंद सम्प्रदाय के नकली आचार्य बन गए। ये महाराजश्री के अल्पकालिक विद्यार्थी भी रहे हैं। २०१० के हरिद्वार कुम्भ में इन्हें आतंकी धनलोलुप, नागाओं तथा श्रीमहंतों ने आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। महाराज श्री से आग्रह किया था कि आप ही इन्हें शिष्य बनाकर त्रिदण्ड दें। महाराजश्री ने इनकार कर दिया। ऐसे सिद्धांत विहीन निष्ठाविहीन आचार विहीन तथा शास्त्र विहीन साधु को महाराजश्री त्रिदण्ड प्रदान करना धर्म विरुद्ध मानते हैं। इनका जन्म बढ़ई कुल में हुआ था।

राजीवलोचन दास– शिष्य बरफानी दादा इंदौर को भी सम्प्रदाय, सनातन धर्म किंवा समस्त मानवता के लिए कलंकभूत नागाओं एवं उनके अनुयाईयों ने नकली रामानंदाचार्य बनाया। कुछ वर्षों के बाद इनके अपने लोगों ने मानसरोवर की यात्रा के क्रम में इन्हें निपटा दिया।

नरेन्द्राचार्य– यह महाराष्ट्र के निवासी हैं। पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध हैं। आदिवासी क्षेत्रों में अच्छा प्रभाव है। धन लोलुपता के कारण नागाओं ने इन्हें भी नकली रामानंदाचार्य से मंडित किया। इन्हें रामानंदसम्प्रदाय का ककहरा भी नहीं मालूम है। धर्म एवं अध्यात्म का तो संस्कार ही नहीं है। हरिद्वार कुम्भ २०१० में ऐतिहासिक भीड़ के साथ प्रवेश किए, लेकिन अपने नकली स्वरूप की उपेक्षा को देखकर उल्टे पाँव दूसरे दिन ही लौट गए। नकली पदप्राप्ति का उन्हें कोई लाभ नहीं मिला। जैसे थे जहाँ थे वैसे ही रह गए। महाराजश्री ने किसी भेट में उन्हें बताया कि आप ठगे गए। वह आश्चर्यचकित थे। अपना बनाने की बात पर महाराज श्री ने कहा कि 'नकली स्वरूप त्यागो तभी संभव है।'

स्वाध्याय : स्वाध्याय मुक्तिकामी मोक्ष जीवन का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। भगवान् वेद की उद्घोषणा है कि स्वाध्याय और प्रवचन से कभी भी प्रमाद न करे "स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां मा प्रमतितव्यम्।" स्वाध्याय का अर्थ है मोक्ष। शास्त्रों का अध्ययन। गुरु परम्परा से प्राप्त मंत्र का जप रामानंदाचार्य बनने के पहले से ही महाराजश्री की स्वाध्याय में अभिरुचि थी किंवा घर से काशी आने

के पहले भी पाठ्यक्रम से बाहर निकल कर मोक्षशास्त्रों का अध्ययन करते रहे। हिन्दी में समुपलब्ध गीता की टीकाओं का प्राय: अध्ययन घर पर ही कर गए। अन्यान्य मोक्ष प्रतिपादक ग्रंथों का अध्ययन भी हुआ। स्वाध्याय का क्रम काशी आने पर भी निरंतर चलता रहा। संस्कृत का अध्ययन प्रारंभ होने से समाप्ति पर्यन्त अर्थात् प्रथमा से आचार्य पर्यन्त पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के अतिरिक्त वह अन्यान्य विषयों वेदांत, सांख्ययोग, मीमांसा आदि का भी अध्ययन करते रहे तथा दूसरों को भी अध्यापित किया। रामानंदाचार्य बनने के बाद भी आश्रमीय उत्तर दायित्वों के निर्वाह के साथ-साथ स्वाध्याय प्रवचन की धारा अवरुद्ध नहीं हुई और उसके माध्यम से बहुसंख्यक साधक लाभान्वित हुए। चातुर्मास व्रत के अनुष्ठान काल में भी अन्यान्य मांगलिक प्रवृत्तियों के लिए मोक्ष शास्त्र का अध्ययन, स्वाध्याय, प्रवचन निरंतर चलता रहा। भगवत् कृपा से यह धारा कभी भी शुष्क न हो ऐसा उनका संकल्प है।

स्वाध्याय गंगा के प्रवाह काल में ही स्वामीजी से जुड़कर अनेक साधु एवं सद्गृहस्थ छात्रों ने अपनी ज्ञान साधना को विकसित किया। आज देश के विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थाओं को उत्कर्षता प्रदान कर रहे हैं। रामानंद सम्प्रदाय में स्वाध्याय व प्रवचन की परम्परा रहीं है। उस परम्परा को और उदात्तता एवं प्रशस्तता मिली है।

रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य के पचीस वर्षों के समर्पण एवं सेवा काल के समर्पित महानुभाव– महाराजश्री जब श्रीमठ में जगुरामानंदाचार्य के रूप में आये तो श्रीमठ के मुख्य प्रबंधक अवध बिहारीदास जी थे। जिन्होंने श्रीमठ में आने के पूर्व रामानंद सम्प्रदाय के बड़ौदा तथा उसके आस-पास समवस्थित पाँच आश्रमों का जीर्णोद्धार तथा उसके योग क्षेम की व्यवस्था की थी। रामानंद सम्प्रदाय के एक कर्मठ त्यागी एवं रचनाकार जीवन के संत के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी। श्रीमठ में आने के बाद भी श्रीमठ की गरिमा एवं सुव्यवस्था को उन्होंने प्रशंसित बल दिया। स्वल्प साधनों के बाद भी श्रीमठ की गरिमा को बढ़ाते हुए एक अच्छी मजबूती दी। ढेर सारे गुणों से पूरित होने के बाद भी उनके अन्त:करण में बुराईयों का भी एक थैला छिपा था जिसने उन्हें अंततोगत्वा महाराजश्री का तथा श्रीमठ का खलनायक सिद्ध कर दिया। श्रीमठ में दूसरा कोई उन्हें पसंद नहीं था। स्वभाव में रूक्षता थी। अपने त्याग व कर्मठता के लिए अतीव अभिमानी धारणा थीं। दूसरों के समान ही जैसे-जैसे महाराजश्री की प्रतिष्ठा बढ़ती

गयी– महाराज श्री के लिए भी ईर्ष्या बढ़ने लगी। यह विद्वेष की अन्तर्चिंगारी थी वह शनैः–शनैः विशाल स्वरूप धारण कर गई। उन्होंने १९९७ ई. में जब महाराजश्री चातुर्मास हेतु देवघर बैजनाथ धाम गए थे। समाज के उनके द्वारा तथा स्वयं ही दूषित मना लोग श्रीमठ पर कब्जा के लिए आ गए। श्रीमठ ट्रस्ट कमेटी नई गठित करके और अध्यक्ष पद पर त्रिवेणी शाहपुरा जयपुर- नारायणदासजी को प्रतिष्ठित कर लाए। गोधरा वाले बलरामदास भी आए, रैवासावाले राघवाचार्य भी उसमें आए। छावनी के महंत श्रीनृत्यगोपाल जी भी आए। इस प्रकार अनेकानेक कालनेमि श्रीमठ पर कब्जा करने आए। सभी की भावनाओं को दूषित करने के कारण श्री अवधबिहारी दास थे। पर काशी के नागरिकों ने जबरदस्त प्रतिरोध किया। हीरासिंह, लोकपति त्रिपाठी ने विरोध किया। विकास से ईष्यालु बने अवधबिहारी दास ने सब ताना-बाना बुना। विजय शंकर पंडा से भी मिलीभगत हो गई। उसमें सबसे बड़ा काम श्री हीरासिंह ने किया। चातुर्मास से लौटने पर महराजश्री ने अवधविहारीदास को सदैव के लिए निष्कासित कर दिया, कुछ दिन बाद डोंगरे महाराज के यहाँ से १०००/- आता था। अवधविहारीदास उसे भी अलग से ट्रस्ट बनाकर वहाँ पैसा मँगाने लगे। खलनायकी का परिणाम हरिद्वार आकर विजली का करेंट लगाकर आत्महत्या कर लिए। अवधविहारी दास को इस घटना के विषय में सभी ने धिक्कारा। एक आदमी भी उन कालनेमियों के इस कदम की सराहना नहीं किया।

महाराजश्री रामनरेशाचार्य का कहना था कि रामानंदाचार्य बनाने के बाद ट्रस्ट के सदस्य के रूप में नहीं आए तो फिर क्यों?

रामविनयदास– सर्वप्रथम संत श्रीरामविनय दास जी मानसतत्त्वांवेषी रामकुमार दास को खोजते श्रीमठ पहुँचे। रामायणी जी तब तक चले गए थे। इनके सीधे व्यक्तित्व को देखकर महाराजश्री प्रभावित हुए और कहा कि रहने का मन हो तो रह सकते हैं। १९८९ से आज तक पूरी मर्यादा से श्रीमठ की सेवा उन्होंने किया। हर सेवा के लिए समर्पित रहे। पढ़े-लिखे तो हैं ही सदाचारी भी हैं। छिद्रविहीन व्यक्तित्व है। उनके संरक्षण में बिहार में एक मंदिर भी है पर उसे महत्त्व न देकर श्रीमठ की सेवा में ही बने रहते हैं। श्रीमठ के भक्तों में भी उनके लिए विलक्षण भाव हैं। अभी नयी कमेटी में प्रधानमंत्री बने हैं। म.मं. गोपालदास के जाने के बाद पदरिक्त था। पूर्ण समर्पण है। निर्विवाद सेवा करते रहे हैं। पूरे साधु समाज में ऐसा पूर्ण समर्पित व्यक्तित्व किसी का नहीं है।

जगन्नाथदास : खाकी अखाड़े के श्रीमहंत लम्बे हनुमान एवं दर्जनो आश्रमों के जीर्णोद्धारक भगवत एवं भगावत सेवा परायण जगन्नाथ दास जी अग्रणी संत हैं। आचार्य निष्ठा एवं मूल पीठ निष्ठा उनकी अतुलनीय है। रामानंदी कोई भी संत साधु महंत इस भावना का शतांश भी नहीं रखता। तन-मन-धन से पूर्णतः समर्पित हैं– श्रीमठ के प्रति नकली रामानंदाचार्य की बाढ़ में बिना बहे उन्होंने श्रीमठ को समर्पण किया। उनका एक सूत्री नारा श्रीमठ का रामानंदाचार्य ही हमारा रामानंदाचार्य है। भगवान् श्रीराम और जगुरा रामानंदाचार्य ऐसे सपूतों को धन्यता पूर्ण जीवन प्रदान करें। ऐसे महानुभावों की संख्या और बढ़े। राममंदिर के निर्माण में भी उनकी पूर्ण उदारता है। ये निष्छिद्र जीवन के महान रामानंदी हैं।

सेनाचार्य अचलानंदजी जोधपुर (राजस्थान)– इनका उज्जैन कुम्भ १९९२ ई. में महाराज श्री के तिलक लगाने पर ही अभिषेक हुआ। ये भी अपने क्षेत्र के सिद्ध, परम उदार, कर्मठ तथा विलक्षण रचनात्मक जीवन के शिल्पी हैं। प्रारंभ से आजतक श्रीमठ की गरिमा बर्द्धन तथा सेवा में पूर्ण समर्पित हैं।

धर्मगौरव श्रीमहंत उमाबा अमराबापू : पालियादधाम, भावनगर (गुजरात)

पालियाद धाम गुजरात ही नहीं अपितु देश का अपने क्षेत्र में माना-जाना अन्नदान एवं गो सेवा का केन्द्र है। प्रातः दस बजे से रात्रि में १२ बजे तक आने वाले संतों महंतों एवं अतिथियों का पूर्ण मर्यादा एवं समृद्धि के साथ भोजन सेवा पालियाद धाम कराता है। पालियाद धाम अन्नदान के क्षेत्र में परिगणित धामों में अन्यतम है। गो सेवा भी हजारो-हजारो की संख्या में पूर्ण निष्ठा के साथ की जाती है। गउओं से प्राप्त किसी भी फल को विक्रय के बिना ही सेवा में उपयोग किया जाता है। इस धाम के संस्थापक विशावण बापू थे जो सौराष्ट्र प्रशासक कुल में जन्में थे। लगभग २८० वर्षों से यह धाम अन्नदान एवं गो सेवा के क्षेत्र में अपनी गौरवभूत एवं प्रेरक पताका फहरा रहा है।

श्रीमहंत उमाबा श्रीमठ के लिए वरदान स्वरूप प्राप्त हुई हैं। प्रारंभ काल से ही सर्वाधिक समर्पण एवं उदार वृत्ति श्रीमठ के विकास के लिए वेजोड़ रूप में प्रस्तुत हो रहा है। पालियाद धाम के संरक्षण एवं विकास के साथ ही श्रीमठ का संरक्षण एवं विकास भी इनके प्राथमिक उद्देश्यों में है। श्रीमठ के सम्बन्ध की शुरुआत इनके पतिदेव श्रीमहंत अमराबापू ने की थी। उनके दिवंगत होने के बाद श्रीमठ सम्बन्ध को उमाबा ने आत्मीय ऊँचाई प्रदान किया है। इनके मुख्य अवदानों में अमराबापू

संस्कृत विद्यापीठ-पंचगंगा के विशाल भवन को खरीद कर श्रीमठ को दिया। श्रीमठ के अतिथि भवन के सभागार को-अमराबापू सभागार निर्माण कराने में महनीय भूमिका उमाजी की रही है। श्रीमठ का सर्वश्रेष्ठ प्रकल्प अद्वितीय श्रीराम मंदिर भूपतवाला हरिद्वार के निर्माण में सर्वश्रेष्ठ भूमिका आप की है। वह कहा करती थी कि यह मेरे जीवन का अंतिम एवं सर्वश्रेष्ठ संकल्प है। पालियाद धाम के इतिहास में जो सम्मान, स्नेह व आत्मीयता श्रीमठ एवं श्रीमठ के आचार्य को प्राप्त हुई वह अनुपम है। ऐसा सम्मान पालियादधाम में किसी को नहीं प्रदान किया गया है। श्रीमठ के चातुर्मास व्रतानुष्ठान में स्वयं उपस्थित होकर तथा कभी प्रतिनिधियों के द्वारा भव्य एवं सफल बनाने में भरपूर योगदान आपका रहा है।

पालियाद धाम में मुख्य आराधना भगवान श्रीराम की ही होती है। यह परमात्मा का अत्यंत अनुग्रह ही माना जाएगा कि पालियाद धाम गादीपति के रूप में उमाबा की तिलक विधि रामभक्ति परम्परा के मूल आचार्य पीठ श्रीमठ के वर्तमान आचार्य जगुरा श्रीरामनेराशाचार्य द्वारा हुई। यहाँ के संस्थापक रामदेव के अवतार के रूप में मान्य हैं। तिलक विधि के बाद उमाबा ने अपनी राम भावना एवं श्रीमठ सेवा को अनुपम उत्कर्ष प्रदान किया। यह गौरव वर्द्धक एवं प्रेरणादायक है। ४ दिसंबर २०१३ ई. को उमाबा का निधन हो गया।

महामंडलेश्वर भगवानदास जी– रामानंद आश्रम श्रवणनाथ नगर, हरिद्वार : रामानंद आश्रम हरिद्वार रामानंद सम्प्रदाय का प्रतिनिधिभूत साधु सेवी आश्रम है। विगत सैकड़ों वर्षों से जिस प्रकार से पूर्ण गरिमा मर्यादा एवं समृद्धि के साथ जो साधु सेवा एवं भक्तों की देखरेख रामानंद आश्रम के द्वारा हो रही है वह केवल सम्प्रदाय ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सनातन धर्म के लिए गौरव वर्द्धक है। हरिद्वार के आश्रमों का व्यवसायिक स्वरूप तीव्रता से प्रकट हो रहा है। लेकिन उस दुर्गन्ध से रामानंद आश्रम सर्वथा अछूता है। वर्तमान श्रीमहंत म.मं. भगवानदासजी अपने स्थापना के काल से ही श्रीमठ एवं वर्तमानाचार्य के लिए पूर्ण आस्थावान, मर्यादावान तथा समर्पित हैं। कभी भी उन्होंने नकली रामानंदाचार्य की बाढ़ से अपने को नहीं जोड़ा। अपनी आस्था को लांछित नहीं होने दिया। तभी तो अपनी इसी आस्था के कारण वे श्रीमठ ट्रस्ट कमेटी के सम्मानित सदस्य भी हो चुके हैं। म.मं. भगवानदास जी की प्रबल आस्था एवं सेवा के ही कारण वर्तमानाचार्य अपने हरिद्वार के प्रवास काल में रामानंद आश्रम में ही प्रवास करते हैं। पूर्ण सुविधा एवं निष्ठा के साथ श्रीमठ की सेवा कर वस्तुत:

आचारनिष्ठ होने का परमलाभ उन्हें मिल रहा है। अतिरिक्त व्यवस्था नहीं होने पर भगवानदास जी अपना कमरा भी खाली कर देते हैं। अभी तो उन्होंने अत्यंत भव्य एवं उपयोगी आचार्य कुंज ही बनवा दिया है। राममंदिर के निर्माण में भी आप की प्रशंसनीय भूमिका है। साम्प्रदायिक स्तर पर श्रीमठ के वैभव विस्तार एवं सुयश में आप की महनीय भूमिका है। रामानंद आश्रम में आचार्य विग्रह की जैसी मुख्य रूप से सेवा पूजा है वैसी पूरे सम्प्रदाय में कहीं भी नहीं है।

श्रीरामभद्रदासजी– ये रामानंद सम्प्रदाय के विद्या, संयम, त्याग तथा निष्ठा की दृष्टि से विभूति संत हैं। इन्हीं ने महाराज जी को न्याय शास्त्र के अध्ययन के लिए प्रेरित किया था। प्रारंभिक क्रम में कुछ पढ़ाए भी थे। कई श्रेष्ठ विद्वानों से महाराज श्री का परिचय कराकर ज्ञानार्जन के महीन कपाट को उद्घाटित किया था। इन्होंने कई विषयों में आचार्य की उपाधि प्राप्त की है। इनका महाराज श्री के शैक्षणिक विकास में अविस्मरणीय योगदान है। रामानंदाचार्य बनने के पूर्व से ही ये महाराजश्री के जीवन से सरस्वती के समान लुप्त हो गए। लगता है अब कभी भी प्रकट नहीं हो पायेंगे। वैसे महाराज श्री के हृदय में उनके लिए अपूर्व प्रेम है। आश्चर्य अवश्य है कि महाराजश्री जिन्हें अपना संरक्षक मानते थे श्रेष्ठ आदर का भाव रखते थे उनके लिए। इसके बाद भी उनका लुप्त हो जाना बुद्धि से परे है। कलियुग में सब संभव है। भगवान् उन्हें गंगा के समान प्रगट करें। यह धर्म के लिए वरदान सिद्ध होगा।

ब्रह्मचारी शारदानंदजी– प्रबंधक (प्रबंध न्यासी) दक्षिणामूर्ति संस्कृत महाविद्यालय नई सड़क, वाराणसी : 'दक्षिणामूर्ति मठ में अध्ययन के प्रसंग में आते-जाते महाराजश्री की शारदानंद से पहचान हुई तथा परस्पर सम्मान एवं स्नेह का भी उदय हुआ। उस समय महराजजी अस्सीघाट पर रहते थे एवं स्वयंपाकी थे। स्वयं पाक में व्यवस्था सम्बन्धी एवं आवागमन की कठिनाईयों को देखकर 'शारदानंदजी' ने महाराजश्री को अपने विद्यालय में बुला लिया तथा विद्यालय परिसर में ही अवस्थित किया। वहाँ विद्यालय परिवार के अंतरंग संत ही निवास करते थे। महराजश्री जब विद्यालय में गये उस समय उत्तर मध्यमा चतुर्थ खण्ड के विद्यार्थी थे। उत्तर मध्यमा चतुर्थ खण्ड से शास्त्री द्वितीय वर्ष तक उसी विद्यालय में स्वामीजी निवास करते रहे। अध्ययन का क्रम विद्यालय से बाहर ही सम्पन्न होता था। विद्यालय के अध्यापकों से शिक्षा-दीक्षा कम ही होती थी। स्वतः पढ़ने और पढ़ाने की ललक एवं क्षमता स्वामी जी के पुण्यों और ईश्वर के अनुग्रह से

प्राप्त हुई। इन तीन वर्षों में शारदानंद जी स्वामी जी के लिए बरदान स्वरूप प्रकट थे। उन्होंने स्वामीजी के साथ सहपाठी, शिष्यत्व, सुहृद तथा महाप्रबंधक के रूप में अतुलनीय व्यवहार सम्पादित किया। वे महाराजश्री से पढ़ते भी थे और उनके मित्र भी थे। पढ़ते थे तथा महाराज जी के प्रबंधक भी थे। संस्था के वरिष्ठ अधिकारी होने के बाद भी उन्होंने स्वामीजी की सुविधा के लिए, उनके सुख के लिए, सम्मान के लिए जैसा किया वह अतुलनीय था। विद्यालय के कार्यालय से बरतनों के साथ दूध लाकर चाय बनाकर स्वामीजी को पिलाना और इस क्रम से कभी भी स्वामी जी की कोई सेवा न लेना उनकी आंतरिक एवं बाहरी श्रेष्ठता का परम द्योतक है। स्वामी जी बहुधा कहा करते हैं कि जिस तरह से उन्होंने उनकी भावनाओं का ध्यान रखकर सम्पादन किया वैसा तो उनके माता-पिता ने भी नहीं किया होगा औरों की क्या बात है।

स्वामी जी की विद्यासाधुता एवं सम्मान के वैभव को देखकर अनेकानेक अध्यापकों एवं संतों के हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला जल रही थी। ईर्ष्या की अग्नि में जलने वाले विद्यालय के प्रधानाचार्य रामसनमुख द्विवेदी प्रधान थे। ईर्ष्या भी महाज्वाला से बचने के लिए स्वामी जी ने दक्षिणामूर्ति मठ को त्याग दिया। विद्यालय परित्याग के बाद भी ब्रह्मचारी शारदानंदजी ने अपनी अनुपम आत्मीयता का त्याग किए बिना पूर्ववत् स्वामी जी का ध्यान रखा। भगवान् सभी को ऐसा मित्र दें। स्वामी जी व शारदानंदजी साथ ही देवदर्शन के लिए जाते थे। नौका विहार भी करते थे। कहीं भी साथ ही होते थे।

इन सभी श्रेष्ठ मनोभावों एवं बाहरी भावों की समता के बाद भी जीवन के अन्य अंशों में स्वामी रामनरेशाचार्य जी अत्यंत ही विषम थे। स्वामीजी छात्रावस्था से ही साधु जीवन जीने में विश्वास करते थे। शारदानंद जी की साज-शृंगार की प्रवृत्ति थी। स्वामीजी ने लम्बे साधु जीवन में कभी साबुन, तेल, शैम्पू का प्रयोग नहीं किया जब कि शारदानंद जी करते थे। स्वामी जी को पता ही नहीं था कि स्नानागार की शीशी सैम्पू की है। धीरे-धीरे उनकी उस प्रवृत्ति का विकास हुआ और उनके जीवन को विपरीत दिशा में मोड़ दिया। फलतः उन्हें संस्था छोड़नी पड़ी। साधु गरिमा भी धूमिल हुई। सामाजिक एवं साम्प्रदायिक उपेक्षा पूर्ण जीवन उन्हें मिला तथा वह केवल कनक खन्ना का ही बन कर रह गए। स्वामी जी श्रीमठ में आने के बाद उनसे दूर-दूर ही रहे। क्योंकि अब वह केवल ब्रह्मचारी शारदानंद नहीं थे। कनक विभूषित शारदानंद हो गए थे।

गोपालानंद बापू विलखा जामनगर (गुजरात)– संन्यासियों के प्रतिष्ठित पंचाग्नि अखाड़े के सभापति ब्रह्मचारी गोपालानंद बापू संन्यासी समाज ही नहीं; अपितु सम्पूर्ण सनातन धर्म के महान विभूतियों में परिगणित हैं। उनका साधु जीवन त्याग, संयम एवं उदारता से परिपूर्ण, साधु समाज का अनुपम धन है। महान ऐश्वर्य के तालाब में वह कमल पुष्प के समान हैं। सम्पूर्ण जीवन वेदाग है। धर्म एवं अध्यात्म के लिए राष्ट्रीयता के लिए, राष्ट्र के लिए है। वैयक्तिक सुख व सम्मान की वहाँ झलक भी नहीं है। ऐसे गोपालानंदबापू का अगाध स्नेह महाराजश्री के लिए है। १९९१ के नासिक पूर्ण कुम्भ में सर्वप्रथम इनका दर्शन स्वामी जी ने किया था। रामानंद सम्प्रदाय के एक श्रीमहंत ने स्वामी जी को नासिक के निकट ही विराजमान कपिल कुम्भ पर बुलाया था। अत्यन्त गरिमापूर्ण पधारावणी हुई। आश्रम परिसर में जाने के पूर्व लोगों ने जमीन पर नये वस्त्रों को विछाकर तथा उस पर बैठाकर सम्मान किया। वस्त्र बिछाने के क्रम आगे कपड़ा नहीं था। बापू ने अपने शरीर स्थित कपड़े को ही बिछा दिया। यह घटना सब को भाव विह्वल व अचंभित कर रही थी। गौरवशाली परम्परा, नागा-साधु पूर्ण वैभवशाली पद, राष्ट्रीय परिचय एवं सम्मान से मंडित जीवन के द्वारा यह घटना देखकर विश्वास के योग्य नहीं थी। १९९१ के बाद आज तक बापू ने उस भावना का भरपूर सतर्कता से निर्वाह किया। जब भी महाराज श्री ने याद किया निश्छल व निरभिमानी होकर तभी पहुँच गए। भरपूर सेवा प्रस्तुत किया।

श्रीमठ उनकी सेवा के लिए पूर्ण आभारी है। भगवान् सभी को ऐसी संत विभूति प्रदान करें।

श्रीरामचंद्र परमहंस– श्रीमहंत दिगम्बर अखाड़ा अयोध्या : परमहंस जी, स्वामी जी के श्रीमठ आने के काल से ही प्रशंसक थे। स्नेह व सम्मान देते थे। १९८८ ई. रामायण मेला के उद्घाटन अवसर पर स्वामी जी उनका पहला दर्शन कर सके थे। रामायण मेला के आमंत्रण में भी उनकी मुख्य भूमिका थी। श्रीमठ की गरिमा स्थापित करने के लिए उन्होंने उस ऐतिहासिक सभा में स्वामीजी की चरण पादुका को सिर पर रखकर अनुपम आस्था व्यक्त किया। नकली रामानंदाचार्यों का जब कारखाना खुला तब भी वे स्वामी जी के पक्ष में बने रहे। नकली रामानंदाचार्य को आचार्य नहीं माना। सम्मान नहीं दिया। 'जो श्रीमठ में विराजमान होगा वही आचार्य होगा।' १९८९ के पूर्ण कुम्भ प्रयाग में स्वामी जी का भी शाही स्नान हो, दिगंबर अखाड़े के साथ शाही स्नान के लिए जाँय इसके

लिए वे अंत तक संघर्ष करते रहे। १९८८ से १९९४ तक उनकी श्रेष्ठ भावना उत्तरोत्तर बढ़ती गई। १९९५ से उनकी भावनाओं में विकृति का आरंभ हुआ। कुछ सनातन धर्म के आतंकी एवं विद्वेषियों के द्वारा भड़काए जाने के कारण उनके भावों में परिवर्तन आया और मृत्यु के कुछ माह पहले तक वह धारा बहती रही। उनसे अंतिम मुलाकात महाराष्ट्र के किसी यज्ञ में ही हुई थी। वह विशालतम यज्ञ था तथा रामानंद सम्प्रदाय के किसी संत द्वारा सम्पादित था– वहाँ उन्होंने स्वामी जी से मिलकर तथा उनके प्रति अनुपम सद्भावों को व्यक्त कर प्रायश्चित्त किया। उन्होंने कहा था कि इस यज्ञ से लोगों को न जाने-क्या-क्या फल मिलेंगे लेकिन उन्हें सबसे बड़ा फल मिला कि वे रामानंदाचार्य के समीप पहुँच गए। उनकी सम्पूर्ण भावनाओं का प्रक्षालन हुआ। अब वह शांति से अपने जीवन का परित्याग कर सकेंगे।

श्रीबलरामदास वृंदावन : बलरामदासजी वृंदावन के रामानंदी संतों में अभी सर्वश्रेष्ठ साधु सेवी संत हैं। साधन शून्य होने के बाद भी सेवा का स्वरूप बहुत बड़ा है। जीवन पूर्ण रूप से निश्छल निरभिमानी बेदाग एवं साधुचर्या से मंडित है। साधु सेवा के अतिरिक्त गो-सेवा, कुम्भसेवा तथा अन्यान्य तीर्थों में अनेक महोत्सवों की सेवा भी करते हैं। स्वामी जी से इनकी मुलाकात पूर्ण कुम्भ हरिद्वार २०१० ई. में हुई थी। स्वामीजी को अपने शिविर में अभिनंदन के लिए ले गए थे। २०१० में ही संत शिरोमणि श्यामाशरण जी महाराज का पचहत्तरवाँ जीवन वर्ष मनाया गया। श्यामाशरण ने एक विशिष्ट अनुष्ठान भी किया था जिसमें सवा करोड़ गोपाल मंत्र का जप किया। आयु एवं जप को निमित्त बनाकर एक विशिष्ट महोत्सव वृंदावन में समायोजित हुआ जिसमें श्रीबलराम दास जी की महनीय भूमिका थी। महोत्सव श्रीमठ द्वारा होना था लेकिन बलरामदास जी ने भरपूर सहयोग किया। श्रीमठ में आकर भी आचार्य प्रवर रामानंदाचार्य जी की जयंती महोत्सव (२०१३ ई.) को विशिष्ट उत्कर्ष दिया। प्रयाग महाकुंभ २०१३ अवसर पर आचार्य महापीठ श्रीमठ को चाँदी निर्मित एक सिंहासन भेंट स्वरूप प्रदान किया। यह सेवा आचार्य निष्ठा का परम द्योतिका है। अभी तो निरंतरता, सम्पूर्णता, तथा निष्ठा से श्रीमठ की सेवा में समर्पित हैं। श्रीमठ, रामानंद सम्प्रदाय किंवा सम्पूर्ण सनातन धर्म को ऐसे सेवाव्रती संतों की नितांत अपेक्षा है।

म.मं. स्वामी विद्यानंदजी महाराज– म.मं. विद्यानंद जी कैलास आश्रम मुनी की रेती ऋषिकेश के दशम् महामंडलेश्वर पद-प्रतिष्ठित थे। संन्यासी परम्परा

में कैलास आश्रम विशिष्ट स्वरूपधारी आश्रम है। प्रारंभ से ही यहाँ ब्रह्म विद्या, सदाचार, वैदिक, मर्यादा तथा वैराग्य सम्पन्न स्थानाधिपति हुए। जिज्ञासु, संतों को निःशुल्क 'आवास वस्त्र, तथा भोजन की व्यवस्था ने आश्रम में अनेकानेक संत विद्वानों को तैयार किया। सम्पूर्ण शांकरी परम्परा किंवा ब्रह्म विद्या परम्परा इस अवदान से चमत्कृत है। म.मं. स्वामी विद्यानंदजी इस आश्रम के वरदान स्वरूप थे। इन्होंने आश्रम के डूबते जहाज को बचाया। अपने पुरुषार्थ को सौन्दर्य दिया संरक्षित किया और बढ़ाया भी। स्वामी श्रीरामनरेशाचार्य का इनसे सम्बन्ध १९८० में हुआ। तब से निरंतर श्रीमठ में आने के पूर्व तक स्वामी जी उनकी शरण में ही रहे। उन्हीं की आज्ञा से कैलास आश्रम की शाखा हरिद्वार के दशनाम संन्यासाश्रम में स्वामी जीने विद्यादान का क्षेत्र चलाया जो अत्यंत प्रशंसित हुआ। विद्याक्षेत्र हरिद्वार को म.मं. जी ने पूर्ण संरक्षण प्रदान किया। म.मं. जी के साथ स्वामी जी ने अनेक धर्म की यात्राएँ भी की। स्वामीजी के सम्पूर्ण प्रवास के काल में महामंडलेश्वर जी ने एक भी आज्ञाकारी वाक्य का प्रयोग नहीं किया। कभी दोनों के एक साथ रहने पर भी महामंडलेश्वर जी समुपस्थित कर्तव्य का सम्पादन स्वयं ही कर लेते थे। यह उनकी अलौकिक मर्यादा की पराकाष्ठा थी तथा स्वामी जी के ऊपर अनुपम स्नेह भी। लेकिन स्वामी जी ने उनकी सेवा में पूर्ण निश्छल भाव, समर्पण एवं निरहंकार होकर रोम-रोम से स्वयं को समर्पित किया। रामानंदाचार्य के रूप में श्रीमठ के आने के पूर्व जब स्वामी जी ने उनसे आज्ञा माँगी तब उन्होंने कहा कि "बहुत बड़ी सेवा का अवसर आप को प्राप्त हो रहा है। अतएव छाती पर पत्थर रखकर मैं बिदा कर रहा हूँ। दुनिया के किसी अन्य आश्रम में आप को जाना होता तो मैं जाने नहीं देता।" स्वामी जी के असंख्य जन्मों के पूर्ण प्रताप से तथा श्रीराम जी के परम अनुग्रह से ब्रह्मविद्या वरिष्ठ महामंडलेश्वर स्वामी विद्यानंद गिरी जी महाराज का स्वामी जी को सान्निध्य मिला था।

स्वामी निश्चलानंद जी गोबर्धन पीठाधीश्वर ज.गु. शंकराचार्य पुरी (उड़ीसा)– सबसे पहले १९९३ ई. में गीता जयंती महोत्सव इंदौर में शंकराचार्य जी महाराज की स्वामीजी से मुलाकात हुई थी। इनके विदाई समारोह का संयोजन स्वामी रामनरेशाचार्य ने किया– जिससे प्रभावित होकर शंकराचार्य जी महाराज ने कहा 'जन्म से आजतक अपने अंतःकरण में विद्यमान श्यामसुंदर को ही मैं अपना सखा मानता था लेकिन आज परमप्रभु ने मुझे बाहर भी एक सखा दिया रामानंदाचार्य के रूप में जो सदाचार, संयम, निष्ठा, प्रेम एवं विद्या के

प्रतिमूर्ति हैं। यह सख्य भाव आजतक गरिमा के साथ अस्तित्ववान है। स्वामी जी शंकराचार्य की भावनाओं का, व्यवहारों का ध्यान रखकर जीवन जीते हैं जिससे उनका सख्य भाव लांछित न हो। शंकराचार्य जी का जीवन विद्या, वक्तृत्व, सनातन धर्म के लिए समर्पण एवं राष्ट्र गौरव बेजोड़ है। वह गोवर्द्धन पीठ के लिए भी परम संरक्षक एवं विस्तारक शंकराचार्य हैं। उनके साथ विभिन्न कार्यक्रमों में सहभागिता तथा पुरी पीठ में भी दो बार उपस्थिति का गौरव प्राप्त हुआ। स्वामी जी का यह सौभाग्य है कि वे उन्हें अपना सखा मानते हैं। परम प्रभु श्रीराम जी स्वामी जी के सख्य भाव का गरिमा एवं मर्यादा से निर्वाह करें। यह स्वामी जी का, श्रीमठ, रामानंद सम्प्रदाय तथा सनातन धर्म का परभ धन है।

शारदा व ज्योतिष पीठाधीश्वर ज.गु. शंकराचार्य श्रीस्वरूपानंदजी महाराज : महाराजश्री रामनरेशाचार्य का इनसे भी अत्यंत मधुर, प्रगाढ़ एवं गरिमामय सम्बन्ध वर्षों से रहा है। सर्वप्रथम शंकराचार्य जी से महाराज जी का मिलना मोतलसर रायसेन म.प्र. में १९९० ई. में हुआ था। वहाँ पर बालयती महेन्द्रानंदपुरी के द्वारा समायोजित यज्ञ में स्वामी जी का पदार्पण हुआ था। जगु रामानंदाचार्य भी वहाँ आमंत्रित थे। गये भी। मंच पर ही स्वामी जी का प्रथम दर्शन हुआ। प्रवचन भी हुए। स्वामी रामनरेशाचार्य को संचालक ने प्रेरित किया कि रामजन्मभूमि के सम्बन्ध के कुछ विचार व्यक्त करें। महाराजश्री ने अपने प्रवचन के क्रम में कहा था कि "मेरे इष्टदेव परमाचार्य-परमाराध्य भगवानश्रीराम ने रामेश्वर भगवान् की संस्थापना किया था। शंकराचार्य भगवान् शंकर के अवतार थे। उनकी गद्दी पर प्रतिष्ठित शंकराचार्यों को भगवान् शंकर का ही स्वरूप माना जाता है। अतएव भगवान् राम का मंदिर शंकराचार्य ही बनाएँगे। यही प्रसंगिक है। भगवान् राम और भगवान् शिव में सखा व सेव्य-सेवक सम्बन्ध है।" यह बात सुनकर 'शंकराचार्य जी अत्यंत हर्षित हुए। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद जगद्गुरु शंकराचार्य के प्रकोष्ठ में स्वामी जी गए। वहाँ भी अनेक तरह की वार्ताएँ हुईं। स्वामी जी ने उनके शंकराचार्य जीवन के अनेक संस्मरण सुनाए। उन संस्मरणों को सुनकर स्वरूपानंद जी विस्मित् और गदगद हुए। उन्होंने निश्छल भाव से कहा कि "आप के सम्बन्ध में सुनकर मुझे ऐसा लगता है कि आयु व परिपक्वता दोनों में आप गुरुघंटाल हो।" १९९० से प्रारम्भ सम्बन्ध निरंतर वर्द्धमान होता रहा। यह श्रीमठ, स्वामीजी और सनातन धर्म के लिए गौरवभूत सम्बन्ध के रूप में विकसित हुआ। १९९३ ई. "रामालय ट्रस्ट" की गठन प्रक्रिया जब प्रारम्भ हुई

ज.गु. शंकराचार्य स्वरूपानंद जी ने कहा कि "जब तक ज.गु.रा. रामनरेशाचार्य इस ट्रस्ट में नहीं होंगे तब तक इस ट्रस्ट में भागीदार नहीं बनूँगा।" उनके अनुपम विश्वास एवं दृढ़ता के कारण स्वामी जी ट्रस्ट में सम्मिलित हुए और महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इस सम्बंध में स्वामीजी का चित्त अत्यंत उल्लसित रहता था। यह निरंतर बढ़ता रहा। १९९५ ई. के प्रयाग अर्धकुम्भ में जगुरा श्री रामनरेशाचार्य, श्री महाराज स्वरूपानंद के मनकामेश्वर आश्रम में बैठे थे। तत्कालीन हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस शुक्ल जी वहाँ विराजमान थे। उन्होंने शंकराचार्य से पूछा ये महात्मा कौन हैं? शंकराचार्य ने निश्छल भाव से कहा "इस देश के एक मात्र मेरे मित्र धर्माचार्य, रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य हैं। श्रीमठ पंचगंगा काशी में रहते हैं।" इलाहाबाद अर्द्ध कुम्भ पर प्रयाग में साथ ही स्नान किया था। जगुरा. सप्तशताब्दी महोत्सव में समापन के अवसर पर शंकराचार्य महाराज की महनीय उपस्थित काशी के मंडप में हुई। अपने ऐतिहासिक उद्बोधन में शंकराचार्य जी ने कहा कि "वर्तमान रामानंदाचार्य अपने प्रारब्ध, कर्मठता एवं ईश्वर अनुग्रह के परमधनी हैं। तभी तो इतना बड़ा आयोजन सम्पन्न हो रहा है। इनके साथ मेरी अनुपम सद्भावना है। सनातन धर्म को इनसे बड़ी अपेक्षाएँ हैं। उन अपेक्षाओं में ये निश्चित रूप से खरे उतरे हैं।"

२००१ ई. में अपनी जन्म भूमि दिघौरी (म.प्र.) में एक बड़े आयोजन का समायोजन हुआ। जगुरामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य भी आमंत्रित हुए। आयोजन अत्यंत विशाल था। उसमें जगु. निश्चलानंद जी, मध्वाचार्य विश्वेशतीर्थ जी महाराज, शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज जैसे महनीय व्यक्तित्वों का वहाँ एकत्रीकरण था। कई मुख्य मंत्री, सोनिया गांधी इत्यादि सभी आमंत्रित थे। उस कार्यक्रम में शंकराचार्य स्वरूपानंद जी ने श्रीमठ के नकली रामानंदाचार्य हर्याचार्य को बुलाया। यह बात स्वामी रामनरेशाचार्य को नहीं मालूम थी। वहाँ जाने पर ही ज्ञात हुआ। जब स्वामी रामनरेशाचार्य को ज्ञात हुआ तो अपने विवेक को जागृत करते हुए अवसर विशेष की चर्चा किया। पारद शिवलिंग की जन्म भूमि की प्रशंसा किया। पूर्व वक्ता हर्याचार्य के विषय में कहा कि "जो श्रीमठ को, रामानंदाचार्य पीठ को देखा भी नहीं है। एक क्षण व्यतीत भी नहीं किया है। अपने अर्जित धन का एक रुपया लगाया नहीं है। उसके बाद भी ये किस प्रकार के रामानंदाचार्य हैं श्रीमठ के। मैं भरी सभा में प्रश्न कर रहा हूँ। १९८९ई. से नकली रामानंदाचार्य बनकर घूम रहे हैं। मुझे आश्चर्य है कि शंकराचार्य जी की कौन सी

शौक मुझसे नहीं पूरी हो रही थी जिसके लिए नकली रामानंदाचार्य को बुलाया। क्या उनके नकली शंकराचार्य को बुलाया जाता तो आते? जैसे वासुदेवानंद आप को स्वीकार्य नहीं हैं वैसे हर्याचार्य भी मुझे स्वीकार्य नहीं हैं। रामानंद सम्प्रदाय के नकली रामानंदाचार्य को क्या शंकराचार्य स्थापित करेंगे? सनातन धर्म मात्र शंकराचार्यों से नहीं चलता है। यह तो सत्यनारायण की कथा करने वाले साधारण ब्राह्मणों का भी योगदान माँगता है। सनातन धर्म का ज्ञान मुझे भी है। मैं उसका प्रयोग भी करता हूँ– यदि यह तथ्य आप को मालूम नहीं, मालूम हो जाएगा।" चर्चा को गतिमान करते हुए महाराजश्री ने कहा "जो सम्बन्ध १९९० ई. में स्थापित हुआ था उसे आज यही दफना कर जा रहा हूँ" और मंच से उठकर चल दिये। शंकराचार्य के रोकने पर भी नहीं रुके इतनी बड़ी घटना के बाद भी बिना आक्रोश के महाराजश्री अपनी पूरी बात कह दी। स्वामी निश्चलानंद ने कहा कि भगवान शंकर को हँसकर विष पीते हुए पढ़ा था आज आप में वह रूप देख रहा हूँ। अब सम्बन्ध की धारा शुष्क हो गई। बीच में शंकराचार्य के प्रयास पर भी महाराजश्री का मन तैयार नहीं हुआ।

ज.गु.शंकराचार्य स्वामी भारतीतीर्थ जी महाराज– 'रामालय ट्रस्ट' के गठन के क्रम में १९९४ ई. में दिल्ली में महाराजश्री की मुलाकात शंकराचार्य भारतीतीर्थ जी से हुई। वे अपने ही आश्रम में चातुर्मासव्रत का अनुष्ठान कर रहे थे। प्रधानमंत्री नरसिंहाराव के सचिव प्रासाद राव के माध्यम से शंकराचार्य जी के साथ सम्मेलन हुआ। 'रामालय ट्रस्ट' गठन के विविध विंदुओं पर प्रामाणिक गंभीर और सौहार्द पूर्ण वार्ता हुई। वार्ता में दोनों धर्माचार्य ही थे। वार्ता समाप्ति के उपरांत कपाटोद्घाटन हुआ। सबसे पहले प्रधान मंत्री के सचिव प्रवेश किए। उनको देखते ही भारती तीर्थ जी ने कहा– "प्रसाद राव धन्यवाद-धन्यवाद-धन्यवाद आप ने आज एक जोरदार भाई दिया– रामानंदाचार्य के रूप में" प्रसाद राव ने कहा प्रसाद दीजिए। इसके बाद 'रामालय ट्रस्ट' के क्रम में मुलाकात होती रही। प्रयाग में भी उनके आश्रम में स्वामी जी मिले। काशी में (श्रीमठ) 'रामालय ट्रस्ट' की पहली मीटिंग में अभिनंदन करते हुए भेंट हुई। उनके प्रसाद का प्रबंध भी– श्रीमठ की ओर से हुआ। दोनों का यह श्रेष्ठ भ्रातृत्व भाव आज भी तथैव बना हुआ है यह सबसे बड़ा धन है।

श्रीमध्वाचार्य विश्वेशतीर्थजी महाराज– **उडुपी पेजावर स्वामी (कर्नाटक)** : देश के मूर्धन्य धर्माचार्यों में आप का नाम परिगणित है। 'रामालय

ट्रस्ट' की पहली बैठक के अवसर पर जब आप श्रीमठ में पधारे तभी प्रथम दर्शन हुआ। आप सौम्य, निश्छल, निरहंकार स्वरूप तथा साधना, सादगी, संयम-नियम व्रत से मंडित एक तेजस्वी संत हैं। मध्वाचार्य जी के साथ रामानंदाचार्य का जो सम्बन्ध 'रामालय ट्रस्ट' के गठन के समय बना एक दूसरे के लिए स्नेह, सम्मान, सद्भाव के रूप में आज तक विद्यमान है। अद्वितीय श्रीराम मंदिर का भूमि पूजन उन्हीं द्वारा सम्पन्न हुआ। उनका जगुरामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य पर बहुत ही स्नेह है। विश्वास है। उनका साहाय्य स्वामीजी का परम धन है।

जगु. निम्बार्काचार्य राधा ब्रजेश्वरी शरण जी महाराज : निम्बार्काचार्य महापीठ सलेमावाद अजमेर (राजस्थान) : कृष्ण भक्ति उपासना का प्रतिष्ठित सम्प्रदाय है निम्बार्क। इसके आचार्य प्रवर विद्वान् निष्ठावान तथा राष्ट्रीय ख्यातिनिष्ठ हैं। इनका स्वामी जी के साथ सुमधुर सम्बन्ध है। प्रारंभिक काल में ये स्वामी जी से उदासीन ही थे। २०१० ई. हरिद्वार के पूर्ण कुम्भ से शनैः शनैः इनका स्नेहिल धर्म तथा आचार्य गरिमा से मंडित सकारात्मक रुख स्वामीजी की ओर हुआ। अब तो ये पूर्ण गरिमा के साथ श्रीमठ के लिए सौहार्द पूर्ण, समर्पित तथा परमोदात्त हैं। स्वामीजी का भी इनके प्रति आदर का भाव तथा अपनत्व है।

जगु.रामानंदाचार्य श्री रामनरेशाचार्य के लम्बे आचार्य जीवन में देश के विभिन्न क्षेत्रों से अनेक लोग जुड़े हैं। उनकी गणना तो संभव नहीं पर उदाहरण स्वरूप कुछ विशिष्ट नाम दिए जा रहे हैं–

संतरामगोयल, कपूर गोयल, साधूराम शर्मा, सुश्री यशोदा जी, रामधारी सिंगला, अमित ललित सीए., सुरेन्द्र गर्ग, फकीरचंद वंसल, रतनलाल सिंगला, भगवानदास सिंगला-गुड्डू, मदन बंसल, सुरेशमित्तल चंडीगढ़, सत्येन्द्र पांडेय, आर. के राय, राजवंश तिवारी, दामोदर सिंह, पुष्पा एवं राजीव रंजन सिनहा, हनुमान जी पुरोहित (राज.), श्रीमहंत रामरतन जी रामसनेही, परमसुखजी बैष्णव, गजानन अग्रवाल, सत्यनारायण अग्रवाल, भरत जी अग्रवाल अशोक गहलौत, रघुनाथप्रसाद मित्तल- भीलवाड़ा, डॉ. महेश शर्मा, ज्ञानेश उपाध्याय, उमाशंकर शर्मा, प्रो. गुलाबनाथ, इंदिरा सिंह, आलोक, नीशू, डॉ. सतीश राय, श्रीकृष्ण चौधरी प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी, डॉ. उदयप्रताप सिंह (साहित्य प्रभारी श्रीमठ सम्पादक सप्तखण्ड), श्रीगणेश्वर शास्त्री द्रविड़, अम्बरीष राय, सारिका अग्रवाल, पं. लोकपति त्रिपाठी, बी.के. अग्निहोत्री पड़ाव, डॉ. एस.डी. सिंह वाराणसी, गोपालदास मित्तल, गीता एवं विष्णु विंदल, श्रीमती स्नेह एवं श्रीमान् जोशी

(एल.एम. जोशी) चंद्रप्रभा एवं शंकर तिवारी, लक्ष्मी एवं तुलसी मनवानी (सभी इंदौर), विनय एवं उत्तम जादौन, नीता एवं डॉ. विजयरघुवंशी लक्ष्मी नारायण, दयानंद कपूर, एवं त्रिलोकी नाथ कपूर, ललिता छतवाल, डॉ. कमल चौहान, आरती अशोक शर्मा, (पटियाला), दीक्षा शर्मा, ब्रह्मदत्त तिवारी, अतुल तिवारी, देवचंद भाई (सूरत), धीरेन्द्र राय बनारस, दिनेश भाई पटेल, अंकलेश्वर, दयाल जी कुमावत (जयपुर), डॉ. दया कृष्ण विजय वर्गीय कोटा, डॉ. देवेन्द्र दीपक (भोपाल), ईश्वर भाई माली (सूरत), कमलेशनंदलाल (समाना मंडी), कृपाशंकर शुक्ल इंदौर, रणबहादुर सिंह (सूरत), कल्याणदत्त शास्त्री (इंदौर), मुरलीधर गणेश पटवर्द्धन, पंचगंगा काशी, निधीन्द्रशर्मा, चंडीगढ़ निर्मलराम गोसेवाव्रती–मेढ़ता (नागौर) रामेश्वर निखरा (भोपाल), नेम प्रकाश खण्डाका (जयपुर), संत कुमार खण्डाका (जयपुर), प्रकाश आडवानी नासिक, रघुनाथ प्रसाद त्रिपाठी (सतना), राखी द्वारिकानाथ (मुम्बई), राजकुमार मिश्र (मुम्बई), डॉ. रमाकांत आंगिरास (चण्डीगढ़), म. राममनोहर दास कलोल, रामबहादुर राय (दिल्ली), श्री म. रघुवीरदास जी (हरिद्वार) श्री निर्मलाजी (लुधियाना), जयश्री व श्रीकांते पाठक (मुम्बई), शोभा भाटिया (मुम्बई), श्वेता (मुम्बई), शबाना सुहेल (देवास), विभाकर मिश्र (दिल्ली), सत्यनारायण अग्रवाल (दिल्ली), सुधीर दुबे (जबलपुर), शोभना वेन, लाड़वा (सूरत), विशंभर पुरोहित (फलौदी), विजय शर्मा खन्ना (पंजाब), विवेक अवस्थी विक्कू (जबलपुर), पप्पू अवस्थी (जबलपुर), डॉ. आदर्श मनीषी। सतीश खण्डेलवाल। गीता (कुरुक्षेत्र) अनीता गोयल समाना, सुनैना पटेरिया, विनोद राय, इंदूराम, वाराणसी।

भक्त मंडल सूरत : छगन भाई, भूपति भाई, जनक भाई, डॉ. देविका (इंदौर), हेमिका (इंदौर), नुम्रा -देवास, दीक्षा पटियाला, योगिका लुधियाना, आशा समाना, रति बैंगलुरू, अन्नू काशी, अलका पंजाब, अनुत्तमा (जोधपुर) अमित–अंजली (जबलपुर) हीना सूरत, चंचला (समाना) दीपिका– (मुम्बई) दिशा– (जयपुर), गीतिका (पटियाला), करिश्मा (मुम्बई), केतकी (पटना), भोनू (भोपाल), मोनिका (इंदौर) मीनाक्षी तीर्थराज (प्रयाग), नीलू (पटियाला), नीलेश नेककुमार (जयपुर), प्रिया–पलक, (इंदौर), मंजूप्रियंका (पटियाला), रीतू (संगरूर), शिवांगी (मुम्बई), रमा (मुम्बई), शालू (आरा), संती रमा (पटियाला)। श्वाती अहमदाबाद, शारदा राजपुरा, सुरभि (जबलपुर), सुनैना (दिल्ली), श्वेता (भोपाल), मनोज्ञ मुकुंद (जयपुर), संगीता पालियाद, उपासना

(पटियाला) बल्लभ (इंदौर), श्रीमती रीता सिंह, अवंतिका सिंह, अवनीश सिंह, अवनिकांत सिंह, श्रीमती रश्मि सिंह काशी।

दयासिंधु शर्मा

रामानंदाचार्य बनने के पहले दयासिंधु शर्मा से स्वामीजी सर्वथा अपरिचित थे। धीरे-धीरे शर्मा श्रीमठ में आने लगे। 'श्रीमठ स्मारिका' के प्रकाशन की जिम्मेदारी उन्हें दी गई। विभिन्न विद्वानों के यहाँ जाना और स्वामी जी की प्रेरणा के अनुसार उनसे लेख लिखवाना, लाना, महराजश्री को दिखलाना इनकी प्रारंभिक सेवा का क्रम था। निबंधों के संग्रह के बाद डॉ. शुकदेव सिंह जी ने सम्पूर्ण निबन्धों को अपनी पैनी दृष्टि से निरीक्षण किया। गुण-दोष की विवेचना किया और स्मारिका रत्ना प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित हुई। 'श्रीमठ स्मारिका' का कलेवर व निबंध संग्रहकाल प्रशंसनीय था। उसमें श्रेष्ठ विद्वानों के विचारों का अद्भुत संग्रह था। ३०० पेज की स्मारिका में विज्ञापन कही नहीं था। स्मारिका का प्रकाशन प्रशंसित होने के बावजूद अशुद्धियों एवं घटिया स्तर का कागज लगाने के कारण विवेकी जनों को पीड़ा मिलती रही। इसका लोकार्पण १९८९ ई. में प्रयाग कुम्भ में हुआ। तब से लेकर २८ जुलाई २०१२ तक श्रीमठ की काशी में सम्पन्न प्रवृत्तियों में यथाशक्ति दयासिंधु शर्मा लगे रहे। लेकिन उनकी अहंकारी प्रवृत्ति, कटु वाणी, गर्हित सोच एवं प्रतिगामी चिंतन ने श्रीमठ को बहुत हानि पहुँचाया। किसी भी व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण कार्यकाल में आगे नहीं आने दिया। परिणामत: सेवकों की दूसरी पंक्ति नहीं बन सकी। कार्य निष्पादन की दशा अत्यंत शिथिल थी, हर कार्य को लटकाने की प्रवृत्ति थी जिसके कारण श्रीमठ की प्रगति को सही स्वरूप नहीं मिल सका। स्वामी रामानंद जी ने सबको गले लगाया। दयासिंधु शर्मा ने गले लगे लोगों को दूर सदा के लिए बहुत दूर कर दिया।

श्यामदास जी जबलपुर– श्यामदास जी प्रेमानंद आश्रम जबलपुर के श्रीमठ से सम्बद्धता के बाद संस्थापक श्रीमहंत हैं। वैसे वहाँ कोई महंत का पद नहीं हैं क्योंकि व्यवस्थापिका ट्रस्ट कमेटी है फिर भी सम्पूर्ण व्यवस्था के सूत्रधार श्यामदास जी ही हैं। ट्रस्ट कमेटी उनकी मदद भी करती है। १९९७ में महेन्द्रानंद पुरी ने जब आश्रम श्रीमठ के वर्तमान स्वामी जी को दिया तब से ही श्यामदास जी ने आश्रम को पूर्ण समर्पित होकर सँभाला। आश्रम प्रगति के पथ पर दौड़ रहा है। प्रेमानंद आश्रम का डूबता हुआ जहाज अब तैरने लगा है। श्यामदास जी की साधुता, समर्पित भावना, ईश्वर, साधु, गौ और अभ्यागत सेवा पूरे देश को

सुगंधित कर रही है। स्वामीजी के प्रति भी अगाध सेवा एवं सम्मान का भाव है। भगवान् इन्हें दीर्घ जीवन तथा रामराज्य के लिए सार्थक जीवन प्रदान करे।

जानकीजीवनदास (बाबाजी)– ये वर्तमान समय में श्रीमठ की समस्त प्रवृत्तियों के मुख्य सूत्रधार हैं। सप्तशताब्दी (सन् २००० ई.) से इनकी सेवा का विस्तार निरंतर चल रहा है। श्रीमठ, श्री विहारम, गंगा पार, रामानंदाचार्य गोशाला एवं वाटिका, जगुरा. प्राकट्यधाम किंवा सम्पूर्ण बाहरी एवं स्थानीय व्यवस्थाएँ अत्यंत दक्षता, पवित्रता, समर्पण तथा पूर्ण धार्मिक एवं व्यावहारिक पटुता से संपादित कर रहे हैं। इनके आने के बाद श्रीमठ का व्यावहारिक स्वरूप भी बढ़ा है। भक्तों तथा संतों के साथ जो आत्मीय भाव कभी नहीं बढ़ा वह अनुपम रीति से विकसित होने लगा है। भगवान् सभी आश्रमों एवं संगठनों को इस तरह के समर्पित संत प्रदान करें।

रामालय ट्रस्ट :

रामजन्मभूमि का ढाँचा गिरने के तथा भाजपा शासित चार प्रांतों की सरकारों को वर्खास्त करने के बाद प्रधानमंत्री नरसिंहाराव की नेतृत्व वाली भारत सरकार ने एक अध्यादेश पारित किया कि १९४७ ई. के बाद बने जितने भी धार्मिक ट्रस्ट हैं वे रामजन्म भूमि के अधिकारी नहीं होगे।लेकिन यह बड़ी समस्या थी कि सुप्रीम कोर्ट यदि हिन्दुओं के पक्ष में यह निर्णय देता है कि मंदिर निर्माण हेतु जमीन दी जाए तो किसको दी जाय। इसी अभिप्राय को ध्यान में रखकर तत्कालीन भारत सरकार अर्थात् प्रधानमंत्री राव साहब ने हिन्दू धर्माचार्यों का एक ट्रस्ट बनाने का निर्णय लिया। इस ट्रस्ट में राजनयिक, नौकरशाह, किसान, व्यवसायी, तथा अन्य किसी वर्ग से कोई भी नहीं रहेगा– ऐसा निर्णीत हुआ। सबसे पहले भारत सरकार के वरिष्ठ सूत्रधारों ने शृंगेरी शंकराचार्य– भारती तीर्थ जी महाराज को अपने अभिप्रायों को समझा बुझाकर अनुकूल किया। उन्होंने ट्रस्ट डीड पर हस्ताक्षर भी कर दिया। इसके बाद दूसरे धर्माचार्यों को 'रामालय ट्रस्ट' में सम्मिलित करने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। बड़े लोगों का ऐसा मानना था कि शृंगेरी शंकराचार्य के बाद सभी बड़े धर्माचार्य जो ट्रस्ट के अभीष्ट हैं हस्ताक्षर कर देंगे। पर ऐसा नहीं हो सका। जब लोगों ने जगु.शंकराचार्य स्वरूपानंद सरस्वती से रामालय ट्रस्ट में सम्मिलित होने का आग्रह किया तब उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा "अयोध्या रामानंद सम्प्रदाय का गढ़ है। अधिकांश संत-महात्मा, आश्रम, रामानंद सम्प्रदाय के हैं। प्रारंभ से रामानंदी लोग ही इस अभियान को चला रहे हैं। इसलिए रामानंद सम्प्रदाय का कोई बड़ा

महात्मा इस ट्रस्ट में अवश्य रहे।'' तब उन्होंने श्रीरामनरेशाचार्य का नाम प्रस्तावित करते हुए कहा कि जब वे ट्रस्ट में होंगे तभी मैं भी रहूँगा। उनके इस दृढ़ उद्घोष के बाद जगुरा. श्रीरामनरेशाचार्य की खोज प्रारंभ हुई। जब स्वामी जी को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने कहा कि यह ट्रस्ट विशुद्ध प्रथम पंक्ति के धर्माचार्यों की होनी चाहिए जो शास्त्र, चरित्र, मर्यादा, राष्ट्रीय भाव से युक्त हों। स्वामी रामनरेशाचार्य को कहीं से ज्ञात हुआ कि चंद्रास्वामी इस ट्रस्ट के सदस्य होने वाले हैं। इस अभियान को स्वामी जी ने प्रमुखता से उठाया कि जिन्हें धर्म का ककहरा भी नहीं ज्ञात है वे कैसे ट्रस्ट में रह सकते हैं? और उनके द्वारा समर्पित और वह स्वयं विभिन्न आरोपों के घेरे में हैं। उन्होंने अयोध्या के तीन संतों का समर्थन किया था। उनके हस्ताक्षर भी हो गए थे– वे थे– हनुमानमढ़ी के श्री मं. ज्ञानदास, श्रीमठ के नकली रामानंदाचार्य हर्याचार्य और विश्वविख्यात संत शिरोमणि देवरहा बाबा के शिष्य पुरुषोत्तमाचार्य।

अभियान चलता रहा। स्वामीजी ऐसे लोगों के विरोध में थे। शंकराचार्य स्वरूपानंद जी भी साथ थे। इस क्रम में यह भी बतलाना आवश्यक है कि चंद्रास्वामी के साथ तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंहाराव की मित्रता विश्वविख्यात थी जिसके कारण कई बड़े व्यक्तित्वों का दबाव चंद्रास्वामी के पक्ष में श्रीरामनरेशाचार्य के पास आ रहा था। १९९४ ई. में श्री रामनरेशाचार्य का चातुर्मास जोधपुर में चल रहा था। वहाँ स्वामी जी को अपने अनुकूल बनाने के लिए प्रधानमंत्री के विशेष निकटवर्ती आई. ए.एस. अधिकारी प्रसाद राव आए। लम्बी चर्चा के क्रम में उन्होंने ट्रस्ट में सम्मिलित होने के लिए स्वामी जी को समझाया। यह चर्चा तीन घंटे तक चली। स्वामी जी अपनी बात पर अडिग थे। ट्रस्ट डीड में स्वामीजी के कहने से कुछ संशोधन भी किए गए और जिस अंश में शृंगेरी के शंकराचार्य को एक पक्षीय महत्त्व दिया गया था उसे संशोधित करना पड़ा। फिर भी वार्त्ता अभीष्ट निर्णय के बिना ही समाप्त हो गयी। वार्ता समाप्ति के बाद प्रसाद राव जा रहे थे तब उन्होंने साष्टांग दण्डवत् किया और कहा कि ''वे दससाल तक बाला जी ट्रस्ट के प्रशासक थे। आप जैसे महात्मा का मैंने दर्शन नहीं किया। मैं आप को समझाने आया था आप ने मुझे ही समझा दिया। मैं दोनों हाथों को उठाकर प्रतिज्ञा करता हूँ अब आप को कभी समझाने का प्रयास नहीं करूँगा। आप जो कहेंगे उसी आज्ञा का पालन करूँगा।'' स्वामीजी ने कहा कि 'पुनः पटा रहे हो क्या?' तब पुनः दण्डवत् करते हुए कहा कि ''मेरा लेना-देना

क्या है। आप जाने नहसिंह राव जाने। मैं तो अपनी भावनाओं का प्रकटन कर रहा था।''

इसके बाद प्रसाद राव दिल्ली चले गए। इस समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार ने 'अयोध्या प्रकोष्ट' बनाया था। जिसके एक सदस्य वरिष्ठ आई.पी.एस. अधिकारी किशोर कुणाल थे। इन्होंने भी जोधपुर चातुर्मास में आकर महाराज श्री को समझाने का प्रयास किया। इनका तर्क था कि स्वरूपानंदजी को दरकिनार करके चंद्रास्वामी को कोई हानि पहुँचाए बिना आप ट्रस्ट बनने दें। स्वामी जी ने उनके तर्क में अपनी सहमति नहीं दिया। स्वामी जी ने कहा कि इस ट्रस्ट में स्वरूपानंद जी को दरकिनार कर सम्मिलित होने में लाभ है या इससे अलग रहने में अंततः उनको मानना पड़ा कि सम्मिलित होने में ही लाभ है। उन्होंने अनेक प्रकार के धर्म, अध्यात्म और राष्ट्रीयता से निचले दर्जों के वादों का भी प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि सर्वत्र मुझे समर्थन मिल रहा है पर घर में ही नहीं– ऐसा कहकर उनकी आँखे भर गई। लेकिन महाराज जी पिघले नहीं और कुणाल भी बिदा हो गए। छह महीने तक कुणाल जी ने महाराजश्री से बात भी नहीं किया। इस क्रम में कि चंद्रास्वामी एवं उनके लोगों को समर्थन मिले इसके पक्ष में प्रो. हरिहरनाथ त्रिपाठी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय काफी सक्रिय थे; पर महाराज जी ने सभी दुराग्रहों को अमान्य कर दिया।

इस संदर्भ में स्वामी श्रीरामनरेशाचार्य ने कहा कि ''स्वरूपानंद जी के साथ विश्वासघात कर अपने धार्मिक व आध्यत्मिक जीवन को लांछित नहीं कर सकता क्योंकि स्वरूपानंद ने रामनरेशाचार्य पर विश्वास किया है। शंकराचार्य ने विश्वास पूर्वक कहा था कि 'रामानंदाचार्य जब ट्रस्ट में सम्मिलित होंगे तभी शामिल होऊँगा।'' इन वार्त्ताओं एवं प्रक्रियाओं की चर्चा राष्ट्रीय समाचार पत्रों में प्रतिदिन होती रहती थी। एकदिन भाजपा के वरिष्ठ नेता हरिशंकर भावड़ा स्वामीजी से मिले। उन्होंने 'रामालय ट्रस्ट' की संभावना के विषय में बात किया। स्वामीजी ने यथावत बता दिया। उन्होंने कहा कि भारत सरकार ही मंदिर बना देगी तो हमें क्या मिलेगा? स्वामीजी ने भावड़ा जी से कहा कि उसका फल राम जी से और जनता से माँगे। प्रभावित भावड़ा प्रसन्न हुए। स्वामीजी चातुर्मास समाप्तकर पुष्कर होते रैवासा भी आये। रैवासा में भी विहिप अधिकारी मिले। सघन चर्चा हुई। राघवाचार्य रैवासा पीठाधीश्वर ने जब उनसे पूछा कि हमारे आचार्य जी कैसे हैं? उन्होंने कहा काश ये धर्माचार्य मेरे अधिकारी होते तो अभियान का फल और ही होता।

महाराज जी के रैवासा में विश्राम करते हुए दिग्विजय सिंह का फोन बार-बार आ रहा था। रात्रि में विलंब से सोने के कारण विलंब से जगे। तत्पश्चात् दिग्गी बाबू से बात हुई। उन्होंने कहा कि "हम सब काशी आ रहे हैं। नरसिंह राव के दूत रूप में।" प्रसाद राव के साथ दिग्गी बाबू विशेष विमान से श्रीमठ काशी आए। महाराज जी ने दिग्गी बाबू से कहा कि "प्रसाद राव से शंकराचार्य स्वरूपानंद चिढ़ते हैं– राव के बिना आए।" दिग्गी बाबू ने कहा कि मेरे लिए संकट है। फिर भी शंकराचार्य के पास दिग्गी बाबू गए। महाराजश्री की दिग्गी बाबू से लम्बी बात हुई। महाराज जी ने कहा कि "चंद्रास्वामी महंत ज्ञानदास, हर्याचार्य व पुरुषोत्तमाचार्य से रहित ट्रस्ट ही स्वीकार है।"

अंततः स्वामी जी ने दिग्गी बाबू से कहा कि चन्द्रास्वामी से आप भी अनुरक्त हैं। उन्होंने कहा मेरे जैसे सैकड़ों लोग हैं। पुनः महाराजश्री दिग्गी बाबू के साथ स्वरूपानंद के पास गए। स्वामी स्वरूपानंदजी को दिग्गी बाबू ने समझाया पर वे सहमत नहीं हुए।

दिग्गी बाबू ने शंकराचार्य से कहा कि मैं "अत्यंत विनम्रता एवं दुख के साथ कह रहा हूँ कि आप को अलग कर भी ट्रस्ट बनाना चाहती है– भारत सरकार।" यह आघात पहुँचाने वाली बात दिग्गी बाबू के मुँह से निकली। सारा परिदृश्य ही खिन्नता में बदल गया। उसके बाद ज.गु.रामानंदाचार्य ने वातावरण को बदलने के लिए कहा कि "दिग्गी बाबू कागज कलम है तो लिखें कि हम दोनों के किनारे होने से राष्ट्र, धर्म, राम मंदिर का भला होता है तो अलग रहेंगे।" शंकराचार्य जी ने सँभलते हुए विषण्ण मन से कहा "अरे दिग्विजय मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन को कांग्रेसियों के लिए लांछित कर दिया यदि उसका यही फल कांग्रेस देना चाहती है तो मुझे मंजूर है। ट्रस्ट बनाओ।" बात यही बिना निष्कर्ष के समाप्त हो गई। दिग्गी बाबू गेस्ट हाउस गए। स्वामीजी श्रीमठ आ गए। निकटवर्ती सूत्रों से बाद में ज्ञात हुआ कि शंकराचार्य के आश्रम में उस दिन रात्रि में किसी ने भोजन नहीं लिया और शंकराचार्य रात्रि पर्यन्त छत पर टहलते रहे। दूसरे दिन हवाई अड्डे पर जब स्वामी रामनरेशाचार्य का सेवक पहुँचा तो दिग्गी बाबू ने सेवक को पकड़ा और कहा कि "जब अपने घर में ही सम्मान नहीं मिलेगा– तो कहाँ मिलेगा? महाराज को प्रसन्न कीजिए।" सेवक ने असमर्थता व्यक्त किया। पर दिग्गी बाबू बार-बार आग्रह करते रहे। सेवक ने यह पूरी बात महाराज श्री को सुना दी। इसके बाद भी यह प्रक्रिया जारी रही। कई नौकरशाह भी

महाराज जी से बात करते रहे। सेवा निवृत्त अधिकारी, कैबिनेट सचिव ने कहा कि यदि आप पहले मिल गए होते 'रामालय ट्रस्ट' बन गया होता।

पुरी के शंकराचार्य यात्रा पर थे। वाराणसी कैंट पर स्वामी जी उनसे मिले। बात-चीत को पूर्णता देने के लिए भदोही तक उनके साथ बैठकर रेल में गए। 'रामालय ट्रस्ट' में आने के लिए उनसे आग्रह किया; लेकिन वे सहमत नहीं हुए। यह स्वामी जी के जीवन की पहली घटना थी। रामानंदाचार्य बनने के बाद वह रेलवे स्टेशन गए– वहाँ से भदोही तक। यह प्रक्रिया चलती रही कि चंद्रास्वामी को रखा जाय या न। इसके बाद स्वामी जी शृंगेरी के शंकराचार्य से मिलने दिल्ली गये। प्रसाद राव के माध्यम से शृंगेरी के शंकरराचार्य से मुलाकात हुई। शंकराचार्य के लोगों ने विधिवत् स्वागत किया। विद्वानों के साथ मानो सनातन धर्म वहाँ उपस्थित था। शंकराचार्य भारती तीर्थ से सभागार के एकांत में गंभीर मंत्रणा हुई– मामला था 'रामालय ट्रस्ट' गठन का। सामान्य चर्चा के बाद स्वामी जी ने आग्रह किया कि ट्रस्ट का निर्माण शीघ्र हो जाए। यह वार्ता लगभग ४ घंटे तक चली। बातचीत में स्वामीश्री ने कहा कि "निश्चलानंदजी के न रहते हुए भी ट्रस्ट बन सकता है पर आग्रह उनसे किया जाना चाहिए।" चंदन की पीठिका पर दोनों धर्माचार्य विराजमान होकर 'रामालय ट्रस्ट' की चर्चा घंटों करते रहे। भारती तीर्थ जी की इच्छा थी कि चंद्रास्वामी और उनके लोग भी रहें। पर स्वामी रामनरेशाचार्य ने अच्छे ढंग से समझाया कि चंद्रास्वामी आपके साथ कैसे बैठेंगे? अत्यंत आत्मीय स्नेहिल, वातावरण में वार्त्ता हुई। प्रसाद राव से भारतीतीर्थ जी ने कहा कि "आप ने जोरदार भाई रामानंदाचार्य को दिया।" दोनों में सौहार्द, स्नेह, आत्मीयता और प्रेमपूर्ण वातावरण में बात सम्पन्न हुई।

उनसे विदा लेकर स्वामी रामनरेशाचार्य दिल्ली से स्वामी निश्चलानंद को मानने वृंदावन चले गये। पर्याप्त वार्ता हुई। पर उनकी प्रतिक्रिया थी कि "राजनीति के लोग दोहन कर छोड़ देते हैं। आप ट्रस्ट में शामिल हों। वातावरण ठीक रहा तो मैं स्वयं आ जाऊँगा।" तत्पश्चात् स्वामी रामनरेशाचार्य एवं स्वरूपानंद ने ट्रस्ट के डीड पर हस्ताक्षर कर दिया। जिस कलम से हस्ताक्षर हुआ वह आज भी श्रीमठ में सुरक्षित है। हस्ताक्षर के दिन जनसत्ता अखबार ने छापा कि 'रामालय ट्रस्ट' गठन की संभावनाएँ निरस्त हो गईं। "मध्वाचार्य, जयेन्द्र सरस्वती, भारती तीर्थ, रामानंदाचार्य, स्वरूपानंद जी, किलाधीश सीताराम शरण जी, गोपालानंद बापू आदि ने हस्ताक्षर कर दिया। पंजीकरण 'रामालय ट्रस्ट' के नाम से दिल्ली के

मुख्य रजिस्ट्रार के माध्यम से हुआ। इन लोगों के बीच बहस शुरू हुई। चंद्रास्वामी ने विरोध स्वरूप स्वयं को हटा लिया। पंजीकरण सम्पन्न हो गया। 'रामालय ट्रस्ट' की घोषणा हो गई– पत्रकार वार्ता में सारी बाते स्पष्ट कर दी गई। अच्छी बात-चीत हुई। प्रेस कांफ्रेंस के बाद रामानंदाचार्य अहमदाबाद आ गए। इसके बाद दिग्विजय सिंह ने कहा कि "रामानंदाचार्य को प्रणाम।" प्रधानमंत्री राव ने कहा कि "राममंदिर तो रामानंदाचार्य ही बनाएँगे– शेष को कोई पद दे दें।"

ज.गु.रामानंदाचार्य श्रीरामनरेशाचार्य की राजनीतिक रुचि कभी नहीं थी। दिग्गीबाबू का आग्रह 'रामालय ट्रस्ट' बनवाने में सफल हुआ। रामानंदाचार्य का मानना है कि 'रामालय ट्रस्ट' का निर्माण विहिप के विरोध में था। राव साहब मंदिर बनाना चाहते थे।

'रामालय ट्रस्ट' की पहली मीटिंग काशी के श्रीमठ में हुई। पहले शंकराचार्य का अभिनंदन हुआ। सभी सात सदस्यों में छह उपस्थित थे। मीटिंग हुई। भारती तीर्थ जी ने प्रथमतः गणेश वंदना की। प्रस्ताव पास हुए। पर राव साहब की राजनीतिक दुर्बलता से 'रामालय ट्रस्ट' निष्क्रिय होता गया। अब एक तरह से ट्रस्ट बिखर गया। भारती तीर्थ– बारह वर्ष के बाद निकलते हैं। रामानंदाचार्य व स्वरूपानंद के बीच संवादहीनता है। मध्वाचार्य जी नाराज हैं कि कांग्रेसी बनने की बदनामी भी हुई और काम भी नहीं हुआ।

❖

डॉ. उदय प्रताप सिंह

01 जनवरी, 1955 ई., आजमगढ़ (उ.प्र.)

एम.ए., पी-एच.डी. (हिन्दी)

सम्प्रति : एसोसिएट प्रो. हिन्दी, श्री महंथ रामाश्रयदास स्नातकोत्तर महाविद्या[illegible] भुड़कुड़ा, गाजीपुर (उ.प्र.)

अकादमिक परिलब्धियाँ : प्रकाशित पुस्तकें : (1) आया साहब और [illegible] कृतियाँ–1989 ई. (2) निर्गुण भक्ति और आपापंथ-2002 ई. (3) अनुचिंतन एवं अनुसंधान-2004 ई. (4) पूरब रंग की साधु कविता-2006 ई (5) मार्क्सवादी हिन्दी समीक्षा का अन्तर्द्वन्द्व-2007 ई. (6) आलोचना की अपनी परम्परा-2007 ई. (7) संतों के संत कवि रामानंद-2010 ई. (8) सामाजिक व्यवस्था में संत कवियों का योग 2012 ई. (9) अलहराम छूट्या भ्रम मोरा-(निबंध) 2014 ई. (10) स्वामी रामानंद (विनिबंध) 2015 ई. (11) एक विरक्त की लोक यात्रा-2015 ई.

सम्पादित पुस्तकें : (1) राम भक्ति साहित्य अन्वेषक और राही-1999 ई. (2) रामानंद रामरस माते-2000 ई. (3) भारतेन्दु फिर 2004 ई. (4) तीर्थराज प्रयाग और कुम्भ महापर्व-2007 ई. (5) ज.गु. रामानंदाचार्य : श्रीसम्प्रदायः (रामावत) विविध आयाम 2010 ई. (6) हरिद्वार समग्र-2010 ई. (7) तीर्थराज प्रयाग और रामभक्ति का अमृत कलश-2013 ई. (8) ज.गु.रामानंदाचार्य सप्तशताब्दी महोत्सव-2013 ई. (9) अभिनव रामानंद : स्वामीरामनरेशाचार्य-2015 ई.

फेलोशिफ : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली– (1) रिसर्च एवार्डी 2002-2005 (2) वृहद शोध परियोजना 2008-2011 ई.

पुरस्कार एवं सम्मान : (1) अखिल भारतीय साहित्य परिषद् कोटा, राजस्थान (2) अखिल भारतीय विद्वत परिषद सम्मान (3) भाषाभूषण सम्मान साहित्य मंडल श्रीनाथद्वारा (4) जगद्गुरुरामानंदाचार्य पुरस्कार-2013 ई. जगद्गुरु रामानंदाचार्य पुरस्कार एक लाख रुपये–(100000=00) 2015 ई.

संपर्क : बी.एफ-एस-13 हरनारायण विहार, सारनाथ-221007, वाराणसी, मो. 09415787367

Email : dr.udaipratapsinghvns@gmail.com